ख्रीष्ट की और कदम

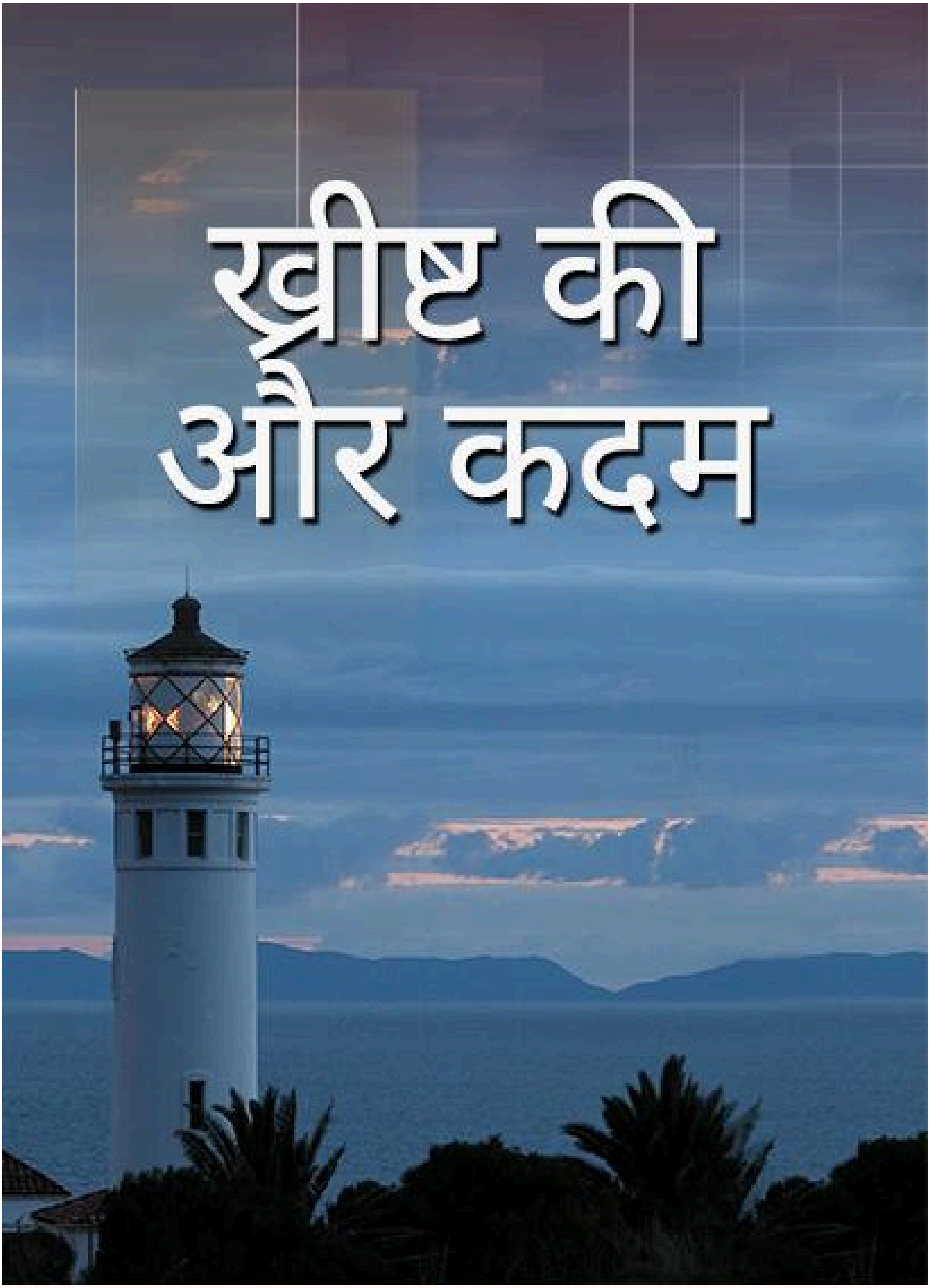

एलन जी. व्हाइट

1 मनुष्य के प्रति परमेश्वर का प्रेम

ईश्वर के पुनीत प्रेम की साक्षी सारी प्रकृति और समस्त श्रुतियाँ दे रही है। हमारी प्राणमयी चेतना, प्रतिभापूर्ण बुद्धि और उल्लासमय आनन्द के उद्भ्म और स्त्रोत स्वर्ग के हमरे परम पिता परमेश्वर ही है। प्रकृति की मनोमुग्धकारी सुषमा पर दृष्टि तो डालिए। यह विचार तोह कीजिए की प्रकृति की सारी वस्तुएँ किस अद्बुत रीति से, न केवल मानव कल्याण के लिए अपितु प्राणीमात्र के हित के लिए अपने रूप-गुण परिवर्तित कर अनुकूलता प्रहण कर लेती है। सूरज की अमृतमयी किरणे और मत्त रागिणी से भरी रिमझ़िम वर्षा

जिस से पृथिवी उर्जस्विज एवं पुलकित हो उठती है, कविता-पंक्तियों की तरह पर्वत-मालायें, जीवन के स्पन्दन से भरी समुद्र की तरंये, और वैभवसुहाग में प्रफुल्लित श्यामला भूमि, इन सब से सृष्टि का अनंत प्रेम फूट रहा है। स्तोत्र कर्ता कहता है:-

सभों की आँखें तेरी ओर लगी रहती है
और तू उन को समय पर आहार देता है॥
तू अपनी मुठ्ठी खोल कर
सब प्राणीयों को आहार से तृप्त करता है॥ भजन संहिता १४५:१५,१६।

ईश्वर ने मनुष्य को पूर्णतः पवित्र और आनन्दमय बनाया और जब यह पृथिवी

सृष्टि के हाथों से बनकर आई तो न तो इस में विनाश का चिन्ह था और न श्राप की काली छाया ही इस पर पड़ी थी। इश्वर के नियम चक्र --- प्रेम के नियम-चक्र --- के अतिक्रम से संताप और मृत्यु पृथिवी में आ घुसी। फिर भी पाप के फल स्वरुप जो कष्ट और संताप आ जाते है, उनके बिच भी इश्वर का अमित प्रगट होता है। पवित्र शास्त्र में यह लिखा है की मनुष्य के हित के लिए ही इश्वर ने पृथिवी को शाप दिया। जीवन में जो कांटें और भटकटैया की भादियाँ उग आई-- ये पीडाएं और यातनाये जो मानव-जीवन को संग्राम , परिश्रम और चिंताओ से पूगी बना रही है--- मनुष्य के कल्याण के लिए ही आई, क्योंकी ये

मनुष्य को उद्‌धोधन और जाग्रति के संदेश दे अनुशासित करती है ताकि मनुष्य ईश्वरीय विधान की कामोन्नति के लिए सतत क्रियाशील रहे और पाप द्‌वारा लाये गए विनाश और अध:पतन से ऊपर उठे। संसार का पतन हुआ है किन्तु यह सर्विशत: आह और यातनाओ से पूगी नहीं। प्रकृति में ही आशा और सुख के संदेश निहित है। भटकटैयो पर फुल उगे हुए है और काँटों के भुरमूट कलित कलियों में लद गए है॥

“ईश्वर प्रेम है।” यह सूक्ति प्रत्येक फूटती कलि पर, प्रत्येक उगन्ती घास की नोक पर लिखी है। रंगबीरंगी चिड़िया जो अपने कलित कलरव से वातावरण को

मुखारेत कर देती है, अपरूप रंगों की चित्रकारी से सजी कलियाँ और कमनीय कुसुम जिन से साग समीरण सुश्मित सुहास से मत हो जाता है, और वन- प्रांत की ये विशाल वृत्तवलिया जिन पर जीवनमयी हरीतीमा सदैव विराज रही है,-- ये सब ईश्वर के कोमल ह्रदय और उसके पिता-तुल्य वात्सल्य के चिन्ह है। ये उसकी उस इच्छा के प्रतिक है जिससे से वोह अपने प्राणियों को आनन्द-विभोर करना चाहता है।

ईश्वर के प्रत्येक वचन से उसके गुण देखे जा सकते है। उसने स्वयं अपने प्रेम और दया की अनन्तता प्रगट की है। जग मूसा ने प्रार्थना की की “मुक्ते अपना गौरव

दिखा" तो ईश्वर ने कहा, "में तेरे सम्मुख हो कर चलते हुए तुम्हे अपने साड़ी भलाई दिखाऊंगा"। निर्गमन ३ ३ : १८,१३। यही तोह उसका गौरव है। ईश्वर ने मूसा के सामने प्रगट हो कर कहा, "यहोवा, यहोवा ईश्वर दयालु और अनुग्रहकारी कोप करने में धीरजवन्त और अति करुनामय और सत्य, हजारो पिडीयों लो निरन्तर करुना करनेहरा, श्र धर्म और अपराध और पाप का क्षमा करनेहारा है।" निर्गमन ३४: ६ ,७। ईश्वर तो "विलम्ब से कोप करनेहारा करुनानिधान" है, "क्योंकी वोह करुना में प्रीती रखता है।" मिका ७: १८॥

ईश्वर ने हमारे ह्रदय को अपने से इस पृथिवी पर और उस स्वर्ग में असंख्य चिन्हों द्वारा बाँध रखा है। प्रकृति के पदार्थ के द्वारा और पृथिवी के गंभीरतम और कोमलतम संबंधो के द्वारा ईश्वर ने अपने आप को ही व्यक्त किया है। फिर भी इन वस्तुओं से ईश्वर के अनंत प्रेम का एक वुदांश ही प्रगट होता है। उसके प्रेम की साक्षी अनंत थी। तोभी मनुष्य अमंगल भावना द्वारा अँधा बना वह ईश्वर की और भवविस्फारित नेत्रों से देखने लगा तथा उसे क्रूर एवं क्षमाहिन् समझा। शैतान ने मनुष्यों को ईश्वर के बारे कुछ ऐसा समझाया की लोग उसे बड़ा कड़ा शाशक समजने लगे -- निर्दय निष्पक्ष न्यायकर्त्ता और क्रूर तथा खरा

कर्जा चुकता लेनेवाला। उसने ईशार को जो रोप रखा उसमें ईश्वर का ऐसा जीव चित्रित हुआ जो लाल लाल आँख किए। हमारे समस्त कामों का निरिक्षण करतो हो ताकि हमारे भूले और गलतियाँ पकड़ ली जाये और उचित दण्ड मिले। ईश्वर के अमित प्रेम को व्यक्त एवं प्रत्यक्ष कर इस कलि छाया को दूर करने के लिए ही यीशु मसीहा मनुष्य के बिच अवतरित हुए॥

ईश्वर- पुत्र स्वर्ग से परमपिता को व्यक्त एवं प्रगट करने के निमित्त अवतरित हुए। “किसी ने परमेश्वर को कभी नहीं देखा एकलौता पुत्र जो पिता की गोद में है उसी ने प्रगट किया।” योहन १:१८। “और कई

पुत्र को नहीं जानता केवल पिता और कोई पिता को नहीं जानता केवल पुत्र और वोह जिसपर पुत्र उसे प्रगट करना चाहे।” मत्ती ११:२८। जब एक शिष्य ने प्रार्थना की कि मुझे पिता को दिखा तो येशु ने कहा, “मै इतने दिवस तुम्हारे साथ हूँ और क्या मुझे नहीं जानता? जिसने मुझे देखा उसने पिता को देखा। तू क्यों कर कहता है कि पिता को हमें दिखा ?” योहन १४:८, ६॥

अपने पृथिवी के संदेश के बारे में येशु ने कहा,“प्रभुने” कंगालों को सुसमाचार सुनाने के लिए मेरा अभिषेक किया है और मुझे इस लिए भेजा है की बन्धओ को छुटकारे और अंधो को दृष्टी पाने का

प्रचार करूँ और कुचले हुए को छुडाऊं। यही उनका संदेश था। वे चारों और शुभ और मंगल मुखरित करते हुए शैतान के द्‍वारा शोषित लोगों को मुक्त एवं सुखी करते हुए घुमते थे। पुरे के पुरे विस्तृत गाँव थे जहाँ से किसी भी घर से किसी भी रोगी की कराहने की आवाज नहीं निकलती थी क्योंकि गाँव से हो कर येशु गुजर चुके थे और समस्त रोगों को दूर कर चुके थे। यीशु के ईश्वरीय साधक गुणों के प्रमाण यीशु के कार्य ही थे। प्रेम, करुणा और क्षमा यीशु के जीवन के प्रत्येक काम में भरी हुई थी। उनका ह्रदय इतना कोमल था की मनुष्य के मासूम बच्चो को देखते ही वह सहानभूति से पिघल जाता था। उन्होंने मनुष्यों की

अवश्यकताओं, आकांक्षाओं और मुसीबतों को समझने के लिए ही अपना बाह्य और अन्तस्वमाद मनुष्यों के जैसा बना लिया था। इनके समक्ष जाने में गरीब से गरीब को और नीच से नीच को जरा भी हिचक नहीं होती। छोटे बच्चे उन्हें देख खींचे आते थे, और उनके घुटनों पर चढ़ कर उनके गंभीर मुख को जिस से प्रेम की ज्योति-किरणे फुट निकलती थी, निहारना बहुत पसंद करते थे॥

यीशु ने सत्य के किसी अंश को, किसी शब्द तक को दबाया था छुपाया नहीं, किंतु सत्य उन्होंने प्रिय रूप में ही, प्रेम से बने शब्दों में ही कहा। जब भी वे लोगों से संभाषण करते तो बड़ी चतुराई के साथ,

बड़े विचारमग्न हो कर और पूरी ममता और सावधानी के साथ। वे कभी रूखे न हुए, कभी भी फिजूल और कड़े शब्द न बोले, और भावूक ह्रदय से कभी अनावश्यक शब्द न बोले जो उसे बिंध दे। मानुषी दुर्बलताओ की कटु और तीव्र आलोचना उन्होंने कभी न की। उन्होंने सत्य तो कहा किंतु वह सत्य खरा होने पर भी प्रेम में सरस रहता। उन्होंने पाखंड, अंधविश्वास और अन्याय के विरुद्ध बातें की, किंतु उनके फटकार के उन शब्दों में आँसू छलक रहे थे। जब धरुशलेम क शहर ने उन्हें, उनके मार्ग को, सत्य को और जीवन को प्राप्त करने से इन्कार कर दिया तो वे उस शहर के नाम पर जिसे वे प्यार करते थे रोने लगे।

वहाँ के लोगों ने उनको अस्वीकृत किया, अपने उद्धारकर्ता को अगीकार करना अस्वीकार किया, फिर भी उन्होंने उस लोगों पर सकरुना और प्रेम भरी ममता की दृष्टी डाली। उनका जीवन ही उत्संग था, आत्म-त्याग का आदर्श था और परमार्थ के लिए बना था। उनकी आँखों में प्रत्येक प्राण अमूल्य था। उनके व्यक्तित्व में सदा ईश्वरीय प्रताप रहता फिर भी उस परमपिता परमेश्वर के विशाल परिवार का प्रत्येक सदस्य के सामने वे पूरी ममता और सहृदयता के साथ झुके रहते थे। उन्होंने सभी मनुष्यो को पतित देखा; और उनका उद्धार करना उनका एक मात्र उद्देश था॥

यीशु मसीह के जीवन के कार्यों से उनके चरित्र का ऐसा ही उज्वल रूप प्रतिभासित होता है। और ऐसा ही चरित्र ईश्वर का भी है। उस परमपिता के करुणा ह्रदय से ही ममतामयी करुणा की धारा मनुष्यों के बच्चों में प्रवाहित होती है और वही खीष्ट में अबाध गति से प्रवाहमान थी। प्रेम से ओत प्रोत, कोमल ह्रदय उद्धारकर्ता यीशु ही थे "जो शारीर में प्रगट हुए।" १ तीमुथियुस ३:१६॥

केवल हम लोगों के उद्धार के लिए ही यीशु ने जन्म ग्रहण किया, क्लेश भोगे तथा मृत्यु सहा। वे "दुःखी पुरुष" हुए ताकि हम लोग अनंत आनन्द के उपभोग के योग्य बन सके। ईश्वर ने

विभूति और सत्य से आलोकित अपने प्रिय पुत्र को राशि राशि सौंदर्य के लोक से वैसे लोक में भेजना अंगीकार किया जो पाप से विक्षत और विनष्ट और मृत्यु की कालिमा तथा श्राप की धुलिम छाया से कलुषित हो गया था। उन्होंने उन्हें अपने प्रेममय अन्तर प्रदेश को और दूतों से महिमान्वित दशा को, तथा लांछना, कुत्य अवहेलना , घृणा और मृत्यु तक सहने के लिए उन्हें इस लोक में आने दिया। “जिस ताड़ना से हमारे लिए शांति उपजेसो उस पर पड़ी और उसके कोड़े खाने से हम लोग चंगे हो सके।” यशावाह ५३:५। उन्हें उस झाङ झंखाड में फंसे देखिए, गतसमने में त्रस्त देखिये, कृसपर अटके हुए देखिए। परमपिता के

पुनीत पुत्र ने सारे पापों का भार अपने कंधो पर ले लिया की ईश्वर और मनुष्य के बीच पाप कैसी गहरी खाई खोद सकता है। इसी कारण उनके होठों से वह करुणा चीत्कार फूट निकली, “हे मेरे ईश्वर, हे मेरे ईश्वर तूने मुझे क्यों छोड़ दिया।” मतौ २७:४६। पाप के बोझिल भार से, उसके भीषण गुरुत्व के भाव-वश, आत्मा के, ईश्वर से विमुख हो जाने के कारण ही ईश्वर के प्रिय पुत्र का ह्रदय टक टुंक हो गया॥

किंतु ये महान बलिदान इस लिए नहीं हुआ की परमपिता के ह्रदय में मनुष्य के लिए प्रेम उत्पन्न होवे, और इस लिए भी नहीं की ईश्वर रक्षा करने के लिए तत्पर

हो जाए। नहीं, इस लिए कदापि नहीं हुआ। “परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम रखा की उस ने अपना एकलौता पुत्र दे दिया।” योहन ३:१६। परमपिता हम सब को पहले से प्यार करते है, वे इस बलिदान (और प्रयशित्त) के कारण प्यार नहीं करते, वरणा प्यार करने के कारण ऐसा बलिदान करते है। यीशु मसीह एक माध्यम थे जिससे हो कर इस अध्:पतित संसार में ईश्वर ने अपने अपार प्रेम को उछाला। “परमेश्वर मसीह में हो कर जगत के लोगों को अपने साथ मिला लेता था।” २ कुरिन्थियों ४:१६। अपने प्रिय पुत्र के साथ साथ ईश्वर ने भी क्लेश सहे। गतसमने के यात्रलाभों के द्वारा और कल्वरी की मृत्यु लीला के द्वारा

करुणामय दयासागर प्रभु के ह्रदय ने हमारी मुक्ति का मूल्य चूका दिया॥

यीशु मसीहा ने कहा “पिता इसलिए मुझसे प्रेम रखता है की में अपना प्राण देता हु की उसे फिर लेऊँ।” योहन १०:१७। “मेरे पिता ने आप सभो को इतना प्यार किया है की उसने मुझे और और भी अधिक प्यार करना शुरू किया क्योंकी में आप के परित्राण के लिए अपना जीवन अर्पण किया। आप के समस्त ॠण और आप के सारे आप्रधो का भर में अपने जीवन को बलिदान चढ़ा कर ग्रहण कर्ता हूँ और तब में आप के एवज में रहूँगा, आप के लिए एक मात्र विश्वसनीय भरोसा बन जाऊँगा और

इसलिए में अपने परम पिता का अनन्यतम प्रेमी हो उठूँगा। क्यों की मेरे बलिदान के द्‌वारा ईश्वर की निष्पक्ष न्याय प्रियता सिद्‌ध होगी और यीशु पर विश्वास करने वालों का वह पाप्मोचक भी होगा॥”

ईश्वर के पुत्र के सिवा किसकी शक्ति है जो हम लोगो की मुक्ति सम्पादित कर सके। क्यों की ईश्वर के विषय घोषणा केवल वोही कर सकता है जो उस की गोद में हो और जो ईश्वर के अनंत प्रेम की गहराई और विपुल विस्तार को जनता हो उसी के लिए उसकी अभी व्यक्ति हो सकती ही। अध्‌:पतित मानव के उद्‌धार के लिए जो अप्रतिम बलिदान यीशु ने

किया उससे कम किसी भी अन्य कार्य के द्वारा ईश्वर का वह अनंत प्रेम व्यक्त नहीं हो सकता था जो उसके ह्रदय में विनष्ट मानव के प्रति भरा है॥

“ईश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम रखा की उससे अपना एकलौता पुत्र दे दिया”॥ वह उन्हें न केवल इसलिए अर्पित किया की वे मनुष्यों के बिच रहे, उनके पाप का बोझ उठाये और इनके बलिदान के लिए मरे, किंतु इसलिए भी अर्पित किया की अध्:पतित मानव उन्हें ग्रहण करे। यीशु मसीहा को मनुष्य मात्र की रूचि और आवश्यकताओं का प्रतिक बनना था। ईश्वर के साथ एक रहने वाले यीशु ने मनुष्य के पुत्रो के साथ आपने को ऐसे

कोमल संबंधो द्वारा बाँध रखा है की वे कमी खुलने या टूटने को नहीं। यीशु "उन्हें भाई कहने से नहीं लजाते।" ईब्री २:११। वे हमारे बलिदान है, हमारे मध्यस्थ है, हमारे भाई है; वे परम पिता के सिंहासन के निचे हमारे रूप में विचरते है और मनुष्य पुत्रो के साथ युगयुगान्तर तक एकाकार है क्यों की उन्होंने ने हमें मुक्त किया है। उन्हों ने ने यह सब सारा केवल इसलिए किया की विनाशकारी और धव्यसत्मक पाप के नरक से मनुष्य उद्धार पावे और वोह ईश्वर के पुनीत प्रेम की प्रतिछाया प्रदर्शित करे। और पवित्र आनन्द में स्वयं भी विभोर होने के योग्य बन सके॥

ईश्वर को हमरे भक्ति का महंगा मूल्य भुगतना पड़ा अर्थात हमारे स्वर्गीय पिता को आपने पुत्र तकको हमारे लिए मरने के हेतु अर्पण कर देना पड़ा। इससे हम कितने गौरव गरिमा से बरी कल्पना कर सकते है की यीशु मसीह के द्वारा हम क्या पा सकेंगे। जब प्रेरित योहन ने नाश होती मनुष्य जाती के प्रति ईश्वर के अनंत प्रेम की ऊंचाई, गहराई, विस्तार आदि देखा तोह वह विस्मय- विमुग्ध हो गया और उसका ह्रदय श्रद्धा और भक्ति से भर उठा। वह इतना भाव-गदद हुआ की उसके पास ईश्वर के प्रेम की अनन्ता और कोमलता के वर्णन के लिए शब्द ही न रहे। और वह केवल जगत को ही पुकार कर दर्शन कर लेने को कह सका। “देखो,

पिता ने हमसे कैसा प्रेम किया है की हम परमेश्वर के सन्तान कहलाए"। १ योहन ३:। इससे मनुष्य का मान कितना बढ़ जाता है अपराधो के द्वारा मनुष्य के पुत्र शैतान के शिकंजे में आ जाते है। किंतु यीशु -मसीहा के प्रायश्चीत-रूप बलिदान पर भरोसा करके आदम के पुत्र ईश्वर के पुत्र बन जा सकते है। यीशु ने मनुष्य रूप ग्रहण कर मनुष्यों को गौरवान्वित किया अब पतित मनुष्य ऐसे स्थान पर आ गए जहा से खीष्ट से सम्बन्ध जोड़ वे ऐसे गरिमा माय हो सकते है की "ईश्वर के पुत्र" के नाम से पुकारे जा सके॥

यह प्रेम अद्वितीय है, अनूप है, स्वर्ग के रजा की सन्तान। कितनी अमूल्य

प्रतिद्न्या है। कठोर तपस्या के लिया यह उपयुक्त विषय है। ईश्वर का अप्रतिम प्रेम उस संसार पर न्योछावर है जिसने उसे प्यार नहीं किया। यह विचार आत्मा को आत्मा समर्पण के हेतु बाध्य कर्ता है और फिर ईश्वर की इच्छा- शक्ति द्वारा मन बंधी बना लिया जाता है। उस क्रूस की किरणों के प्रकाश में हम जितना ही उस ईश्वर्य चरित्र का म्हनन करते है, उतना ही दया, करुणा, क्षमा, सच्चरित्रता और न्याय शीलता के उदाहरण पाते है और उतने ही असंख्य प्रमाण उस अनंत प्रेम का पाते है, एव उस दवा को पाते है ओ माता की ममत्व भरी वात्सल्य- भावना से भी अधिक है॥

2 पापी को ख्रीष्ट की आवश्यकता

मनुष्य को आदि में आची शक्तियाँ और संतुलित मस्तिष्क प्राप्त हूए थे| तब वह आपने आप में पूर्ण और ईश्वर के साथ एकतान था| किंतु अद्न्या के तिरस्कार करने पर उसकी शक्तियाँ नाशोंमुख हुई और प्रेम के स्थान पर स्वार्थ ने जड़े जमा दी| अपराध के कारण उसका स्वाभाव इतना अशक्त हो गया की वह अपनी पूरी सामर्थ्य से भी शैतान की शक्तियों के मुकाबिला करने में समर्थ न हो वह शैतान के द्वारा बन्दी बनाया गया और सदा के लिए उसी रूप में कैद रहता किंतु ईश्वर ने मुक्त करने का बीड़ा उठाया| शैतान की चेष्टा तोह यह

थी की मनुष्य - श्रुस्ती जो श्वरिय विधान निहित था उसे ही विनष्ट कर दिया जाए और सारी पृथिवी म संतोष और मृत्यु की विभिशिक छा गए। फिर तव, वह इन सारे कुत्सित पदार्थों को दिखाकर कहता की यह ईश्वर की मनुष्य - सृष्टि करने का परिणाम है॥

अपनी निष्पाप अवस्ता में मनुष्य उस सर्व शक्तिमान के साथ प्रतीक्षा वार्तालाप कर्ता "जिसमे बुद्धि और द्न्यान के सारे भंडार छुपे है।" कुलुस्सौ २:३। किंतु पाप के बाद मनुष्य को पवित्रता से आनन्द प्राप्त न होने लगा। और वह ईश्वर के साक्षात्कार से अपने से दूर रखने लगा। अभी भी उन आत्माओं की जो पुनर जाग्रत नहीं हो सकी है, यही

हालत है। वे ईश्वर के साथ एकतान नहीं, और उसके साक्षात्कार से पुलकित नहीं होती। पापी ईश्वर के समक्ष प्रसन्ना हो ही नहीं सकता; और वह पवित्र प्राणियों के सामने जाने अथवा उनकी संगती करने से भागेगा। यदि उसे स्वर्ग में प्रवेश करने की अनुमति मिल जाए, तो वह खुश न होगा। निस्वार्थ प्रेम की रागिनी वहा बचाती रहती है, प्रत्येक ह्रदय से उस अनंत प्रेममय ईश्वर के ह्रदय की जो झंकार वहा निकलती रहित है, वह उसकी हतंत्री के किसी तार को स्पंदित न कर सकेगी। उसके विचार उसके अनुराग और उद्देश्य से इतने पृथक लगेंगे की वे नितांत प्रतिकूल जाचेंगे। स्वर्ग के अनंत संगीत में वह बेसुरा रहेगा। स्वर्ग उसके लिए यातनाओं

का केंद्र हो उठेगा। स्वर्ग की प्रभा और उसके उल्लक के केंद्र ईश्वर से आँख चुराकर भाग जाने को वह लाल चित हो उठेगा। ईश्वर ने दुष्टात्माओ को स्वर्ग से बहिष्कृत करने का जो नियम बनाया वह ईश्वर की स्वेच्छाचरिता नहीं। वे लोग आपने अयोग्यता के कारन खुद ही स्वर्ग से भागते है। अतः ईश्वर की प्रभा तो उनके लिए अस्मसात करने वाली ज्वाला हो उठेगी। आपने को उनकी नजर से छिपा लेने के उद्योग में जो उन्ही के कल्याण हेतु मरा, वे सर्वेशतः विनष्ट होना पसंद करेंगे॥

हम लोगों के लिए केवल अपनी ही शक्ति-सामर्थ्य के बूते पर पाप के उस गद्दे से बच निकलना मुश्किल और

असंभव है। जिस में हम लोग गिर गए है। हमारे ह्रुधय की पापी हो गए है और उन्हें बदलना असंभव है। "अशुद्‌ध वास्तु से शुद्‌ध वास्तु को कोंन निकल सकता है? कोई नहीं"। भ्रय्युब १४:४। "शारीर पर मनन लगाना तोह परमेश्वर से बैर रखना है क्यों की न तो परमेश्वर की व्यवस्था के आधीन है और न हो सकता है"। रोमियो ८:७। शिक्षा, संस्कृति, इच्छा शक्ति का विकास मानव प्रवास इन सबो का एक उचित क्षेत्र है, किंतु इस क्षेत्र में ये निरे अशक्त है। इन सबो से बाहरी व्यापार चेष्टाओ में कुछ अंतर आ सकता है, किंतु ह्रदय में परिवर्तन लाना इनके द्‌वारा असंभव है। ये जीवन-स्त्रोत को पवित्र नहीं बना सकते। जब तक ह्रदय के निम्न स्थल से एक शक्ति

सतत उद्योग न करे और जब तक ऊपर से नविन जीवन का स्पंदन न मिले तबतक पापी से पवित्र बनना टेढ़ी खीर है। हृदय की वह शक्ति यीशु मसीह है। इनके अनुग्रह द्वारा ही आत्मा की सुषुप्त शक्तिया जाग्रत एवं जीवित और जोतिश्मती हो सकती है, ईश्वोरंमुख हो सकती है, पवित्र हो सकती है॥

उद्धारकर्ता प्रभु ने कहा, “यदि कोई नए सिरे से न जन्मे,” जब तक उससे नूतन हृदय, नविन ईछाएं, उद्धेश और अभिलाषाएं जिनका लक्ष अभिनव जीवन की प्राप्ति हो, नहीं मिलती, तब तक वह “परमेश्वर का राज्य नहीं देख सकता”। योहन ३:३। यह विचात्र-परंपरा, की मनुष्य के स्वाभाव में जो अच्छाई है

उसी को विक्सित करना अवशक है, एक घातक धोखा है। “शारीरिक मनुष्य परमेश्वर के आत्मा की बातें ग्रहण नहीं कर्ता क्यों की वे उसके लिखे मुर्खता की बातें है और न वह उन्हें जान सकता क्यों की उनकी जांच आत्मिक रीती से होती है”। १ कुरिन्थियों २:१४। “अचम्भा न करे की मैंने तुझसे कहा की तुम्हे नए सिरे से जन्म लेना अवश्य है।” योहन ३:७। ख्रीष्ट के बारे में यह लिखा है, “उसमे जीवन था और वह जीवन मनुष्यों की ज्योति थी” योहन। १:४। “और किसी दुसरे से उद्धार नहीं क्यों की स्वर्ग के निचे मनुष्यों में कोई दूसरा नाम नहीं दिया गया जिससे हम उद्धार पा सके।” प्रेरित ४:१२॥

ईश्वर के ममतामय दया के प्रतीक्षानुभव ही सब कुछ नहीं, उसके चरित्र की उदारता, पित्तुल्या सहृदयता अदि देखना ही सबकुछ नहीं। उसके नीयम-चक्रों की चतुराई और न्याय शीलता की जांच ही इसलिए करना की वे प्रेम के अमर सिद्धांत पर अवलंबित है या नहीं, सब कुछ नहीं। प्रेरित पवन ने यह सब कुछ देख लिया था जब उसने कहा, "में मान लेता हु की व्यवस्ता भली है।" "व्यवस्ता पवित्र है और आद्न्य भी ठीक और अच्छी है।" रोमी ७:१६,१२। किंतु आत्मा की मृत्यु विभिशिक और निराश में वह कहता चला, "पर में शारीरिक और पाप के हाथ बिका हुआ हूँ"। रोमी ७:१४। वह पवित्र और निष्पाप जीवन के लिए तड़पता रहा क्यों की इन्हें वह आपनी

शक्ति से प्राप्त न कर सकता था। वह चिल्ला उठा, “में कैसा अभागा हूँ मुझे इस मृत्यु के देह से कौन छुड़ाएगा?” रोमी ७:२४॥ सभी युगों में सभी देशो में पीड़ित हृदयों की ऐसी ही चीत्कार लोक लोक में गूंजी है। इन सबो का एक ही उत्तर है, “देखो परमेश्वर का मेमना जो जगत का पाप हर ले जाता है।” योहन १: २६॥

इस सत्य के प्रतिपादन के लिए और पापी यों की आत्मा को उन्मुक्त करने के हेतु उन्हें इसे साफ समझा देने के लिए ईश्वर ने कितने चित्र, आख्यायिकाये, घटनाये राखी है। एसाव को धोका देने के बाद, पाप करके जब याकूब आपने पिता के घर से भाग खड़ा हुआ तो अपनी

अपराध के गुरुता वह खुद शर्म से गड गया। जाती-च्युत और अकेला हो जाने पर उन सबो से से विचुद जाने पर जिसने जीवन को सुन्दर बनाया था वह इसी उद्धेडवुन में पड़ा रहता की अपने पाप के कारण कही ईश्वर से अलग और स्वर्ग से दूर न फेक दिया जाऊ। चिंता के मारे वह उबड़ खाबड़ जमीन पर लेट कर छटपटाने लगा। उस समय उसके चारो और घोर शांत निर्जन पर्वत थे और ऊपर तागओ से सज्जित विस्तृत नील आकाश। जब वह सो गया तो स्वप्न में चकाचोंध करने वाली ज्योति उसपर फूट पड़ी। फिर उस तराई से असंख्य धुंदली सीडिया उठती हुई नजर आई जो सीधे स्वर्ग के द्वार तक चली गयी। और उनपर ईश्वर के दूत गन उतरते उठते

मालूम होने लगे और उचात्तम क्षमा से आकाशवाणी सुने पड़ी जिस में सांत्वन और आशा के सन्देश छिपे थे इस तरह याकूब की आत्मा में जिसकी अनंत चाह थी, वह उद्धार कर्ता याकूब को न्यात हुआ। उसने पुलकित और रोमांचित हो कर वह मार्ग देखा जिसके द्वारा उसके जैसा पापी भी ईश्वर के साथ संलाप करने में पुन्हा समर्थ हो सकता था ईश्वर और मनुष्य के बिच यातायात के एक मात्र माध्यम यीशु ही याकूब के स्वप्न की सीडियों के रूप में उसके पास आए थे॥

यह वोही चीज़ है जिसका संकेत खीष्ट ने नाथ ननतनएल के साथ वर्तालाब करने के समय किया और कहा था "तुम स्वर्ग को

खुला और परमेश्वर के स्वर्ग दूतों को मनुष्य के पुत्र के ऊपर चढ़ते उतारते देखोगे।” योहन १:५१। अपने धर्म को याग कर पापी होने के साथ साथ मनुष्य ने अपने आप को ईश्वर से विमुख कर लिया और पृथिवी स्वर्ग से पृथक खिसक गयी। उन दोनों के बिच जो खाई खुल गयी वह संलाप को असंभव बनाने लगी। किंतु खीष्ट के द्वारा पृथिवी फिर स्वर्ग से सबंधित हो गयी। अपने गुणों के कारण ही खीष्ट ने पृथिवी और स्वर्ग के बिह की खाई पर सेतु का निर्माण किया, पाप की बनी खाई को व्यर्थ किया। फिर स्वर्ग दूत गन मनुष्यों के साथ विचारो का आदान प्रदान करने लगे। अशक्त और हताश हो जाने की अवस्ता में

पतित मनुष्यों का सबंध खीष्ट सर्वशक्तिमान परमेश्वर से जोड़ता है॥

किंतु मनुष्य के सारे स्वप्न हवाई किला होंगे, मानव-मात्र को उन्नत करने के सारे प्रयास व्यर्थ होंगे, यदि हम इन सपनो और प्रयो के बिच अध्:पतित मानव- जाती के एक मात्र रक्षक और सहायक को भूल जाँव। “हर एक अच्छा दान और हर एक उत्तम घर” ईश्वर से ही प्राप्त होता है। याकूब १:१७। ईश्वर से पृथक कोई भी वास्तविक आदर्श चरित्र नहीं। और ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र मार्ग यीशु है। वह कहता है, “मार्ग और सच्चाई और जीवन में ही हु बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँचता।” योहन १४:६॥

ईश्वर के ह्रदय में अपने पार्थिव बच्चो के प्रति विकल चाह रहती है और यह चाह मृत्यु से तीव्र है। अपने प्रिय पुत्र को हमे देने के साथ साथ उसने एक ही उपहार में समस्त स्वर्ग को उड़ेग दिया। उद्धार करता खिश्त का जन्म-जीवन, और मृत्यु, उनका मध्यस्त होना, दूतों का मंगल प्रयास आत्मा की प्रेरणा, परम पिता का स्वर्ग से सारे कामो का नियंत्रण और सबो में व्याप्त रहना, सारे स्वर्ग के प्राणीयों की हमारी मंगल-कामना--ये सब सारे का मनुष्य की मुक्ति के लिए हुए॥

आह, कितना आश्चर्य जनक बलिदान हम लोगों के लिए हुआ। जरा गंभीर

चिंतन करे! पथ से भूले हुए विमुख मनुष्यों को परम पिता के गृह की ओर वापिस लोटा लेने के लिए ईश्वर ओ कितना अधिक परिश्रम और चिंतन करना पड़ रहा है। जरा इसकी मुक्त कंठ से गु गाये! ऐसे महान उद्देश और ऐसे गूढ़ शक्तिशाली उपाय कभी भी काम में न आये। सयता और धर्म के अनुसरण के लिए विपुल

पुरस्कार--स्वर्ग-सुख,स्वर्गदूतों के संघ विहार, ईश्वर और उसके पुत्र के संग संलाप और प्रेम, युग युग तक हमारी सारी शक्तिओं की उन्नति और उर्ज्वस्विन विकास--क्या हमे यह प्रेरणा नहीं देते, यह उत्साह नहीं भरते की हम अपने ह्रदय की पूरी लगन से स्त्रष्टा और मुक्ति डाटा की सेवा करे?

और दूसरी ओर ईश्वर ने पाप का जो दंड न्याय द्वारा घोषित किया है, की अनिवार्य प्रतिफल मिलेगा, चरित्र अध्:पतित होगा, और अंत में विनाश आ घेरेगा, वह हमे शैतान के सेवा करने से रोकता और सचत करता है॥

तब क्या हम ईश्वर की करुना के गुण न गए? इस से अधिक हमारे लिए वह कर ही क्या सकता था? हमे चाहिए की उनसे सुन्दर संबंद स्तापित कर ले क्योंकी उन्होंने ने हम सबो पर आश्चर्य जनक प्रेम दिखाया है। हमारे पास जितनी सामर्थ्य और संबल है, उसका उपयोग कर उनके अनुरूप बनाने की चेष्टा करना ही हमारे लिए उत्तम है। तभी हम

स्वर्ग दूतों की संगती का आनंद उठाएंगे और परम पिता तथा प्रिय पुत्र के साथ एकतान हो कर रहेंगे॥

3 पश्चाताप

मनुष्य ईश्वर के सम्मुख कैसे योग्य ठहरे? पापी कैसे धर्मी बनाया? केवल यीशु खीष्ट के सहारे ही हम ईश्वर के साथ एक हो सकते है, पवित्रता के साथ एकतान हो सकते है। किन्तु तब प्रश्ऩ होता है की यीशु के पास हम कैसे जाएँ? जैसे पेंटीकोस्ट के दिन, हजारों की संख्या में भीड़ के लोगों ने पाप की गरिमा समझ चिल्ला उठा था,“हम क्या करे!” पतरस ने उसके जवाब में पहला शब्द जो कहा था, वह यह था,“मन फिराओ” अर्थात पश्चाताप करो। प्रेरित २:३८। थोड़ी देर बाद, दुसरे प्रसंग में उसने कहा,“मन फिराओ और लौटो की तुम्हारे पाप मीटाए जाएँ।” प्रेरित ३:१९॥

पश्चाताप का अर्थ है पाप के लिए वास्तविक दू:ख करना और पाप से दूर हटना। पाप को हम तब तक छोड़ नहीं सकते जब तक पाप के पापत्व को हम देख न लें। और जब तक हम पाप से अपने ह्रदय को दूर न कर ले,तब तक हमारे जीवन में कोई वास्तविक परिवर्तन न होगा॥

अधिकाँश लोग पश्चाताप के वास्तविक अर्थ को समझते ही नहीं। अनेक लोग लोभ तो प्रगट करते है की उन्होंने पाप किया, और साथ साथ ऊपरी टीमटाम में कुछ सुधार भी ले आते है क्योकि वे डरते है फिर फिर कुछ गलती हुई तो अपने ही मस्तक पर क्लेश घहरायेगा। किंतु

बायबल के अर्थ से यह पश्चाताप है ही नहीं। ए लोग क्लेश से दू:खित हैं न की पाप से। एसाव को भी ऐसा ही लोभ हुआ था जब उसने यह देखा की उसका जन्मसिद्द् अधिकार उससे सदा के लिए छिऩ गया॥

बलाम ने जब देखा की उसके रास्ते को रोक एक दूत नंगी तलवार लिए खड़ा है, तो उसने अपना अपराध इस लिए स्वीकार कर लिया की जान बच जाए। अन्यथा उसके प्राणों के लाले पड़े थे। किंतु बलाम के इस व्यापार में सच्चे पश्चाताप की कोई बू-वास नहीं थी। उस में पाप का अनुताप नहीं, उद्देश में परिवर्तन लाने का संकल्प नहीं, अन्य-अत्याचार-अपराध पर घृणा नहीं।

यहूदा इस्कारियत ने अपने प्रभु को पकडवाने के बाद कहा, “मैं निर्दोष को घात के लिए पकडवा कर पाप किया हैं।” मती २७:४॥

धिक्कार की भीषण भावना से तथा न्यायानुसार दण्ड-प्राप्ति की आकुलता से प्रेरित हो कर उसकी कपटी आत्मा ने पाप-स्वीकृति की। काम करने के बाद उसके अंदर यह दुध्देषे भय समा गया की इसका फल क्या होगा और वह त्रस्त हो उठा। किंतु उसकी आत्मा में मर्मितिक ग्लानी और ह्रदय विदारक लोभ न था कि उसने ईश्वर के पुनित पुत्र को धोखेबाजी से पकड़वाया था, और इस्रायल के पवित्र बन को अस्वीकार किया था। फीरौन जब ईश्वर के न्याय

चक्र मैं पिस रहा था, तब उसने पाप काबुल कर लिए। उसने स्वीकृति इस लिए दी की वह दराड से परित्राण पाए। फिर जैसे ही दराड रुका वह स्वर्ग के विरुध्द उठ खड़ा हुआ। ये सारे उदहारण ये दिखाते हैं की लोग पाप के त्रुब्ध होते थे न की पाप के लिए दुःखित और संतप्त थे।

लेकिन जब ह्रदय ईश्वर की प्रेरणा से स्पंदित होता है; तब अंतरचेतना जागृत हो उठती है, और तब पापी इश्वर के उस नीयम चक्र की पवित्रता और विस्तार का कुछ अंश देख लेता है जिसपर उसका स्वर्ग और पृथ्वी का समस्त साम्राज्य अवलंबित है। “सच्ची ज्योति जो हर एक मनुष्य को प्रकाशित करती है जगत में

आने वाली थी,” आत्मा के गुप्त अंतरप्रदेश में प्रभाव बिखेर देती है और तब अंधियालें में छिपी वस्तुएं प्रत्यक्ष दिख पड़ती है। सारे मस्तिष्क और ह्रदय में विश्वास की द्ढ़ भीतियां खडी हो जाती है। पापी की ह्रदय में यहोवा की पवित्रता का भाव उदित होता है और वोह अपने अपराध और मलिनता के कारण सर्वज्ञ प्रभु के समक्ष आने में कापता है। वह इश्वर के प्रेम, पवित्रता के सौंदर्य, पुनीतता के उल्लास को देखता है। वह स्वछ्छ और पवित्र होने को तथा इश्वर के समक्ष आ जाने को विकल हो उठता है॥

पतन के उपरांत दाऊद ने जो प्राथना की वह पाप की वास्तविक वेदना का परिचय देती है। उसका पश्चताप ह्रदय के गूढ़

प्रदेश से फूट पड़ा था। वह अपराध छिपाना नहीं चाहता था। न्यायोचित दंड पाने के डर से प्रेरित हो कर उसने प्रार्थना नहीं की। दाऊद ने अपनी अनीति की गुरुत्व को समझा। उसने अपनी आत्मा की क्लूष-कालिमा देखी। अपने पाप को देख वह घृणा से भर उठा। उसने केवेल क्षमा याचना के लिए ही प्रार्थना नहीं की किन्तु ह्रदय शुद्धि के लिए भी प्रार्थना की। वह शुद्धात्मा के उल्लास के लिए व्याकुल कंदन कर उठा। वह इश्वर के समक्ष एकतान और एकाकार होने को विलक पड़ा। उसकी आत्मा से वाणी फूटी वह कुछ इस प्रकार थी:-

“क्याही धन्य है जिसका अपराध क्षमा किया और जिसका पाप ढाँपा गया हो॥

क्याही धन्य है वह मनुष्य जिस के
अधर्म का यहोवा लेखा न ले
और उसके आत्मा के कपट न हो॥”
भजन सहिता ३ २ : १, २॥

“है परमेश्वर अपनी करुना के अनुसार
मुझ पर अनुग्रह कर
अपनी बड़ी दया के अनुसार मेरे
आपराधो को मिटा दे॥
मुझे भली भाँती धो कर मेरा अधर्म दूर
कर
और मेरा पाप छुडा कर मुझे शुद्ध कर॥
मैं तो अपने अपराधों को जानता हूँ,
और मेरा पाप निरन्तर मेरी दृष्टी में
रहता है॥
जुफा के द्वारा मेरा पाप दूर कर और मै
शुद्ध हो जाऊँगा

मुझे धो और मैं हिम से अधिक श्वेत बनूंगा॥......
हे परमेश्वर मेरे लिये शुद्ध मन सिरज
और मेरे भीतर स्थिर आत्मा नये सिरे से उपजा॥
मुझे अपने सामने से निकाल न दे
और अपने पवित्र आत्मा को मुझ से न ले ले॥
अपने किये हुए उद्धार का हर्ष मुझे फेर दे
और उदास आत्मा दे कर मुझे संभाल॥
तब मैं अपराधियों को तेरे मार्ग बताऊंगा,
और पापी तेरी ओर फिरेंगे॥
हे परमेश्वर हे मेरे उद्धारकर्ता परमेश्वर
मुझे खून से छुड़ा,
मैं तेरे धर्म का जय जयकार करूँगा॥”

भजन संहिता ५१:१;१४॥

इस प्रकार का पश्चाताप हम मनुष्यों के लिये संभव नहीं। ऐसी शक्ति हम में तभी आयेगी जब हम ख्रीष्ट से इसे पायें -- उस ख्रीष्ट से जो अब ऊपर स्वर्ग को चले गए हैं और जो मनुष्यों पर उपहारों और उपकारों के वरदान बरसाते हैं॥

बस यही एक बात हे जिस पर अधिकाँश भ्रम में पड़ जाते हैं और ख्रीष्ट को जो सहायता देने को तत्पर रहते हैं स्वीकार करने में चुक जाते हैं लोग यह सोचते हैं कि वे ख्रीष्ट के समक्ष तब तक नहीं जा सकते जब तक पश्चाताप नहीं कर लेते और पश्चाताप पाप-मोचन कि पूरी तैयारी कर देता है। वह तो ठीक है कि

पाप-मोचन के पहले पश्चाताप होता है,क्योंकि भग्न ह्रदय ही उद्धारकर्ता प्रभु कि आवश्यकता को अनुभव करेगा। लेकिन तब यह प्रश्न उठता है कि क्या पापी को यीशु के समक्ष उपस्थित होने के लिए तब तक ठहरे रहना चाहिए जब तक उसने पूरा पश्चाताप न कर लिया है? अर्थात क्या पश्चाताप पापी और उद्धारकर्ता प्रभु के बीच रूकावट सकता है?

बाइबल यह नहीं कहता कि पापी को पहले पूरा पश्चाताप कर लेना ही पड़ेगा और तभी वह यीशु के उस निमंत्रण को स्वीकार कर सकता है जिस में उन्हों ने कहा है, “हे सब थके और बोझ से दबे लोगों मेरे पास आओं मैं तुम्हे विश्राम

दूंगा।” मतौ ११:२८। असल बात तो यह है कि यीशु मसीह के अन्तर से जो गुणों कि ज्योति फुट निकलती है वही वास्तविक पश्चाताप के लिए प्रेरित कर सकती है। पतरस ने जब इसरायल के लोगों को शिक्षा दी तो उसने सारी बातें खोल कर कह दी कि “उसी को परमेश्वर ने कर्ता और उद्‌धारक ठहरा कर अपने दहिने हाथ से ऊँचा कर दिया कि वह इस्राइलियों को मन फिराव और पापों को क्षमा दान करे”। अन्तर्चेतना को जाग्रत करने के लिए यीशु के आत्मा के बगैर पश्चाताप हम कर ही नहीं सकते और उसी तरह उनके बगैर हम क्षम्य हो ही नहीं सकते॥

ख्रीष्ट प्रत्येक अच्छी शक्ति का स्त्रोत है। पापों के विरुद्ध शत्रुता के भाव का बीजारोपण हमारे ह्रदय में उन्ही के द्वारा ही संभव है। सत्य और पवित्रता कि प्रत्येक प्रबल आकांक्षा, अपने पापमय जीवन कि प्रत्येक स्वीकृति-सूचक धिक्कार, इस बात कि साक्षी देती है कि ख्रीष्ट का आत्मा हमारे अन्तर प्रदेश में काम कर रहा है॥

यीशु ने कहा है, “मैं यदि पृथिवी से ऊँचे पर चढाया जाऊँगा तो सब को अपने पास खीचूँगा।” योहन १२:३२। पापियों के सामने यीशु को उस उद्धारकर्ता के रूप में व्यक्त करना आवश्यक है जो जगत के पाप के कारण प्राणों का विसर्जन कर रहा हो और जब हमारी ऑखों के सामने

ईश्वर का यह मेमना कलभेरी के क्रूस पर खटके दिखाई पड़ता है, तो मुक्ति का रहस्य हमारे मस्तिष्क्य में खुलने लगता है और तब ईश्वर की करुणा हमें पश्चाताप करने को बाध्य करती है। पापियों के लिए मरने में यीशु ने ऐसे प्रेम का आदर्श रखा जो हमारी समझ के परे है। जब पापी इस प्रेम को देखता है तो उसका ह्रदय द्रवित हो जाता है, मस्तिष्क्य में तीव्र प्रभाव पड़ता है और आत्मा में पश्चाताप का घोर शोक छा जाता है॥

यह सच है कि कभी कभी आदमी अपने पाप-कर्म्मों से लज्जित हो जाता है और तब कुछ बुरी आदतों को छोड़ देता है। यह सब कुछ वह खिष्ट कि ओर आकृष्ट

होने कि बात को बगैर जाने ही कर लेता है। लेकिन ज्योंही वह सुधार के लिए चेष्टा करता है और पुण्य कार्य के लिए सच्ची लगन से कोशिश करता है त्योंही खिष्ट की शक्ति खींचती है। एक प्रेरणा-शक्ति अप्रत्यक्ष रूप में उसकी आत्मा के अंदर काम करती रहती है और इसका उसे मान भी नहीं होता।फल स्वरुप उसकी अन्तर्चेताना सजग और तीव्र हो उठती है और बाह्य जीवन उसके अनुरूप पुनीत बन जाता है। फिर जैसे जैसे यीशु उसे अपने क्रूस की ओर देखने को प्रेरित करता है, ताकि वह यह प्रत्यक्ष देख सके किस प्रकार उसीके पापों ने उसके शरीर को क्षत और आहत किया है, वैसे ही वैसे उसकी अन्तर्चेताना सारी व्यवस्था समझ में आ जाती है। अब उसे

जीवन की पापपूर्णता और अपनी आत्मा में जड़ जमाए हुए पाप साफ दिखाई पड़ते है। वह यीशु की पवित्रता को कुछ समझने लगता है और कह उठता है, “ऊफ,यह पाप भी कैसा है जो अपने शिकार की मुक्ति के लिए इतना महान बलिदान चाहता है। क्या इतना प्रेम, इतनी कड़ी यात्रनाओं, इतनी लांछनाओं की इस लिए जरुरत पड़ी कि हम लोग नाश न हो जएं, बल्कि अनंत जीवन का उपभोग करें?”

पापी इस प्रगाढ़ प्रेम के विरुद्ध भी जा सकता है:वह यीशु द्वारा आकृष्ट होने से भी इन्कार कर सकता है, किंतु यदि वह ऐसा न करे तो निश्चय ही यीशु द्वारा आकृष्ट होगा। मुक्ति के उपायों के

द्यान से ही वह पश्चाताप के आँसू बहते हुए क्रूस के निचे जाने को प्रेरित होगा। तभी वह उन सारे पापों पर सच्चा शोक प्रगट करेगा जिन के कारण ईश्वर के प्रिय पुत्र कि मृत्यु हुई॥

जो पवित्र मस्तिष्क समस्त प्रकृति की सुषमा के पीछे क्रियाशील है, वही मनुष्यों के ह्रदय की धड़कन में बोल रहा है और उनके अन्दर उसकी कामना बलवती कर रहा है जिस का उन में नितांत अभाव है। पार्थिव वस्तु उनकी इस कामना की पूर्ति नहीं कर सकती। ईश्वर का आत्मा भी उन्हें उन वस्तुओं की खोज में सलग्न रहने का आदेश दे रहा है जिन से शांति और विश्राम प्राप्त हो -- अर्थात खीष्ट का अनुग्रह और

शुद्धता का आनंद। परोक्ष एवं प्रत्यक्ष प्रेरक शक्तियों के द्वारा हमारे त्राणकर्ता सदा इसी चेष्टा में लगे हैं कि हमारे मन पाप के असंतोषप्रद क्षणिक सुखों से विरत हो कर उनके द्वारा अनंत आनंद में लीन हो जाएँ। उन लोगों के लिए जो संसार के टूटे नाद से जल पीने की व्यर्थ चेष्टा में जुझ रहे हैं, यह स्वर्गीय सन्देश है,"जो प्यासे हो वह आए और जो कोई चाहे वह जीवन का जल सेंत मेंत ले।" प्रकाशित वाकय२२:१७॥

यदि अपने ह्रदय से आप पार्थिव वस्तुओं से अधिक सुंदर और सत्य वस्तु की लालसा करते हों,तो यह जान जाइये कि आप कि यह लालसा आप कि आत्मा में ईश्वर कि वाणी है। उन से आप कहिये

कि आप में हार्दिक पश्चाताप आवे, और अपने अनंत प्रेम पूर्ण पवित्रता और विशुद्ध भावना के साथ यीशु आप के समक्ष आ जाएँ। यीशु के जीवन में ईश्वर के नियमों का मूल सिद्धांत -- ईश्वर और मनुष्य में प्रेम--पूरी तरह प्राप्त होता है। उदारता, निस्वार्थ प्रेम आदि उनके आत्मा के जीवन-स्त्रोत थे। जब हम उन्हें देखते हैं, जब उनकी प्रभापूर्ण किरणें हम लोगों पर पड़ती हैं, तभी उस दिव्य प्रकाश में हम अपने ह्रदय के पापों को देखते हैं॥

निकुंदमस की तरह हम लोगों ने भी आत्म-प्रशंसा आपने आप को यह समझ रखा होगा कि हमारा जीवन विशुद्ध है, नैतिक चरित्र है और इस लिए साधारण

पापियों कि तरह अपने को ईश्वर के सामने तुच्छानितुच्छ कह कर झुका देना उचित नहीं। किंतु जब खिष्ट की प्रभा हमारी आत्मा को जगमग कर देगी तभी हम देख सकेंगे कि हम कितने अपवित्र हैं, हमारे उद्धेश्य कितने स्वार्थपूर्ण है, और हमारे जीवन के प्रत्येक व्यापार को कलुपित करनेवाले, ईश्वर के विरुद्ध शत्रुता के भाव कितने गहरे हैं। तभी हम जान पायेंगे कि हमारा धर्म गंदे चीथड़े की तरह फटा है, और पाप की उस कलुष कालिमा से यीशु का शुद्ध लोहू ही हमें मुक्त कर सकता है, तथा ह्रदय को विशुद्ध कर उस में अपने अनुरूप भावों का नवजागरण फूंक सकता है॥

ईश्वर के आलोकमय गौरव की एक किरण, यीशु की पवित्रता की प्रभा की एक रश्मि यदि आत्मा में प्रवेश कर जाय, तो पाप के दाग और धब्बे साफ साफ नजर आ जायें, और मानव-चरित्र के सारे दोष और त्रुटियाँ खुल पड़ें। वासनामयी और दबी हुई बुरी इच्छाएं, ह्रदय में छिपी विद्रोह की भावनायें, ओठों में दबी गंदी बातें, सारी की सारी प्रत्यक्ष हो जायें। पापी ने जो भी काम ईश्वर के नियम को उखाड़ फेकने के लिए बागी हो कर किये थे, वे तब उसकी नजर के सामने आ जाते है। फिर तो जब वह यीशु के पवित्र, निष्कलंक चरित्र पर दृष्टिपात करता है वो अपने ऊपर घृणा के भाव से भर जाता है॥

एक बार दानियेल भविष्यवक्ता के पास एक दूत आया। उसने जब दूत के चारों ओर के प्रभापुंज को देखा, तो वह अपनी दुर्बलता और अपूर्णता के भाव से कांप उठा। उस मोहक दृश्य के भाव का वर्णन करते हुए वह कहता है :-- "इस से मेरा बल जाता रहा और मैं श्रीहत हो गया और मुझ में कुछ भी बल न रहा।" दनिष्येल १०:८। आत्मा को जब ईश्वरीय प्रकाश स्पर्श करेगा तो वह अपने स्वार्थ को धिक्कार उठेगा, और आत्म-तुष्टि और आत्म-स्पृदा से घृणा कर उठेगा और यीशु की धार्मिकता की प्रेरणा पा हृदय की उस पवित्रता की चेष्टा करेगी जो ईश्वरीय विधान के अनुरूप हे और खिष्ट के उज्जवल चरित्र के योग्य है॥

पावल कहते हैं कि “व्यवस्था की धार्मिकता के विषय कहो,” अर्थात ऊपरी बाह्याचार आदि के विषय कहो तो मै “निर्दोष” था। फिलिप्पी ३:६। किंतु जब उस व्यवस्था की आध्यात्मिक विशेषता पर दृष्टी पड़ती, तो वे अपने को पापी घोषित करते। यदि व्यवस्था के शाब्दिक अर्थ करें और जिस तरह ऊपरी मतलब देख कर साधारण मनुष्य निर्णय घोषित करते हैं, उसी तरह हम भी ऊपरी मतलब से जाँच करें, तो कहेंगे कि पावल ने अपने आप को पाप से बचाया था।
लेकिन जब पावल ने विधान के नियमों का गंभीर मनन किया और उसके अन्तर के गूढ़ सिद्धांतों का अवलोकन किया, और अपने ऊपर वैसी नजर से निरिक्षण किया जैसे दृष्टी से ईश्वर उसे देख रहा

था, तो वह लज्जा के मरे झुक गया और अपने सारे अपराध स्वीकार कर लिए। वह कहता हे,“मैं तो व्यवस्था बिना पाहिले जीवित था पर जब आज्ञा आई तो पाप जी गया और मै मर गया।” रोमी ७:९। जब उसने विधान के आध्यात्मिक अर्थ को समझ लिया तो पाप अपने पुरे खूंखार रूप में सामने आ खड़ा हुआ और आत्म-तुष्टि गायब हो गई॥

ईश्वर समस्त पापों को बराबर नहीं समझते हैं। उनकी और मनुष्य कि दृष्टि में पापों कि श्राणियाँ हैं। किंतु मनुष्य कि नजर में कोई अपराध कितना भी लघु और न्यून क्यों न लगे, ईश्वर की दृष्टि में वह छोटा कभी नहीं। मनुष्य का न्याय पचपतापूर्ण और सदोष है किंतु

ईश्वर सभी वस्तुओं का उचित मूल्य आँकता है। नशेबाज पर घृणा की जाती है, और उस से कहा जाता है कि अपने पाप के कारण वह स्वर्ग से वंचित रहेगा। किंतु अहंकार, स्वार्थ और लालच के विरुद्ध कोई अधिक नहीं कहता। और ये वे ही पाप हैं जिन्हें ईश्वर विशेषत: नापसन्द करते हैं: क्योंकि ये पाप उनके उदार चरित्र के बिल्कुल प्रतिकूल हैं, प्रेममय और विशुद्ध विश्वव के विरुद्ध हैं। जो किसी निकृष्ट पाप के गढ़े में गिर पड़ेगा वह तो अपने ऊपर कुछ लज्जित होगा, अपनी दीनता और खिष्ट के आलोक की आवश्यकता की अनुभूति करेगा, किंतु अहंकार किसी की जरुरत नहीं समझता। अतएव अहंकार यीशु और उनके अक्षय वरदान के विरुद्ध

ह्रदय के कपाटों को पूरी तरह बंद कर देता है॥

उस दिन कर उगाहनेहारे ने जब प्रार्थना की कि, “हे परमेश्वर मुझ पापी पर दया कर” (लूक १८:१३)। तब उस ने अपने आप को बड़ा भारी दृष्ट समझा और दुसरे लोगों ने भी ऊसे पतित करा दिया। लेकिन उसने यह जन लिया कि उसे क्या आवशयकता है और तब वह अपने पाप के बोझ को लिए हुए शर्म में गडकर ईश्वर के पास दया की भीक मांगने को आ खड़ा हुआ। उस का दिल ईश्वर के प्रकाश के प्रवेश के लिए खुला पड़ा था ताकि ईश्वर उसे पापों से मुक्त करा दे। इनके विपरीत फरिसी के दर्प और आत्म-स्पृहा से भरी प्रार्थना यह सुचित

कर रही थी कि ईश्वरीय प्रेरणा के विरुद्ध उस का ह्रदय बद्ध था। वह ईश्वर से दूर पद गया था अतएव उसे अपनी कलुष-कालिमा का कोई ज्ञान नहीं। उसे यह बोध नहीं था कि ईश्वरीय शुद्धिके विरुद्ध वह कितना अशुद्ध है। उसे किसी की आवश्यकता मालूम नहीं और वह कुछ न पा सका॥

यदि आप अपने पापमय चरित्र देख लें, तो उसके सुधार के लिए न रुकें। वैसे ऊँगलियों पर गिने जा सकते हैं जो ये समझते है कि खिष्ट के समक्ष आने के वे बिल्कूल अयोग्य हैं। क्या आप यह समझते हैं कि अपनी शक्ति से आप सुधार जाइयेगा? “क्या हबसी अपना चमड़ा या चीता अपने धब्बे बदल

सकता? यदि कर सकें तो तू भी जो बुराई करना सीख गई है भलाई कर सकेगी।” थिमेयाह १३:२३। हमारी सहायता केवल ईश्वर कर सकता है। हम इन से अधिक तीव्र प्रेरणा, अधिक सुंदर अवसर अथवा अधिक पवित्र ह्रदय के लिए प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। अपने किए हम कुछ भी नहीं कर सकते। हमें निश्चित हो कर यीशु के पास अवश्य चलाना चाहिये॥

किंतु किसी को इस भ्रम में न रहना चाहिये कि ईश्वर अपनी प्रेमार्दता और क्षमाशीलता वश उन्हें भी तार लेगा जो उसके अनुग्रह को अस्वीकार करते हैं। पाप कि निकृष्टता क्रूस के द्वारा प्रगट होती है। जब कोई यह कहे कि परमेश्वर

इतना उदार है कि वह किसी भी पापी को त्याग नहीं सकता, तो उसे कालमेरी की रोमांचकारी लीला देखने को कहो। मनुष्य को बचाने का कोई और उपाय न रहने के कारण, बिना बलिदान के मानव-जाति को पाप के विनाश से मुक्त करने का अन्य साधन न रहने के कारण, नाशोन्मुख मनुष्य-मात्र को पुन: ईश्वर और पवित्र आत्मा के मध्य ले आने का और अन्य मार्ग न रहने के कारण, प्राण-समर्पण के बगैर मनुष्य का पुन: आत्मिक जीवन प्राप्त करना असंभव हो जाने के कारण, खिष्ट ने विद्रोही पुत्रों का, गद्दार मनुष्यों का दोष अपने सिर-माथे लिया और पापियों के बदले खुद यातनायें भोगी। ईश्वर-पुत्र का प्रेम, संताप और मृत्यु सभी पाप को कालिमा

की साक्षी हैं और यह घोषित करती हैं कि पाप कि दुद्धर्ष भुजाओं से बच निकलना, और उन्नत जीवन कि आशा करना तब तक निरर्थक है जब तक आत्मा अपने आप को खिष्ट के चरणों में समर्पित नहीं करती। खिष्ट में आत्म-समर्पण द्वारा ही यह संभव है, अन्यथा नहीं॥

पश्चाताप-रहित कठोर लोगों की यह आदत कि वे सच्चे ईसाइयों पर तनाकशीकर आत्म-प्रवंचना में खुश रहते हैं और कहते हैं,"मैं भी उन्हीं जैसा सच्चरित्र हूँ। वे लोग मुझ से भाविक आत्म-त्याग करनेवाले, शांत-प्रकृति और सतर्क नहीं। वे भी भोगविलास और आत्म-श्लाघा पसंद करते हैं, मैं भी उन्हें

पसंद करता हूँ।” इस तरह वे दूसरों के पाप और अवगुणों को अपने कर्त्तव्य में लापरवाही लाने का बहाना बना डालते है। किंतु दूसरे के पाप और अवगुण हमारी रक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि ईश्वरने हम सबों को एक ही अवगुण भरा मानुषी चरित्र नहीं दिया। हमें आदर्श उदाहरण के रूप में ईश्वर का निष्कलंक पुत्र दिया गया है। जो लोग ईसाइयों की कमजोरियों का बखान करते हैं उन्हें ही सुधर कर अच्छे जीवन और उन्नत विचारों के उदाहरण रखने चाहिये। यदि उन्हों ने ईसाइयों के जीवन का क्या रूप हो उस की बहुत ही ऊच्च कल्पना कर ली हो, तो उसका मतलब यह भी हुआ कि उनका पाप और भी अधिक विशाल हो उठा। वे जानते हैं कि

सच्चा मार्ग क्या है, फिर भी उस पर चलते नहीं॥

कार्य को स्थगित करने, टालमटोल करने से सदा बचे रहिये। पाप से निर्मुक्त होने और यीशु के सहारे ह्रदय की पवित्रता पाने के शुभ कार्य को कभी स्थगित मत कीजिये। यही हजार हजार की संख्या में लोग फिसल पड़ते हैं और अनंत कल के लिए नष्ट हो जाते हैं। मैं यहाँ जीवन की क्षण-भंगुरता या अस्थिरता की विशद व्याख्या नहीं करुँगी, किंतु यह निश्चयपूर्वक कहूँगी कि ईश्वर की मनुहार से भरी वाणी सुनकर आत्म समर्पण करने में विलम्ब करना खतरे से खली नहीं। इस विलम्ब में बड़ा खतरा है, और इस खतरे का

ख्याल लोग अच्छी तरह नहीं रखते। और इस विलम्ब का अर्थ यह भी हुआ कि लोग पाप में ही मग्न रहना पसंद करते है। कितना भी नगराय पाप क्यों न हो उस में रत रहने का मूल्य अपार हानि उठाना ही है। जिसे हम नहीं दबा सकते वह हमें डालेगा और अन्त में हमारा विनाश कर डालेगा॥

आदम और हवा ने यह धारणा बना ली कि मना किए हुए फल के खा जाने जैसी छोटी बात की इतनी भीषण सजा नहीं मिल सकती जितनी ईश्वर ने घोषित की थी। किंतु वही छोटी सी बात ईश्वरीय विधान को तोड़ डालने में समर्थ हुई और उसी के कारण मनुष्य ईश्वर से बहुत दूर जा पड़ा और सारे संसार पर मृत्यु और

अपार यंत्रनाएँ बाढ़ की तरह आ चढ़ीं। मनुष्य के आज्ञा-भंग करने के फल-स्वरुप युग युगान्तर से वह संसार कातर चीत्कारे कर रहा है, और सारी सृष्टि कराहती हुई चली चल रही है। उसके विद्रोह के प्रभाव स्वर्ग में भीं पड़े। ईश्वर की आज्ञा तोड़ डालने के महान अपराध के प्रायश्चित रूप में काल्वरी का दृश्य आज भी इंगित कर रहा है कि उसके लिए कितने विशाल बलिदान कि आवश्यकता हुई। अब हमारे लिए यही उचित है कि हम किसी भी पाप को नगराय और छोटा न समझे॥

नियम भंग करने का प्रत्येक अपराध, खिष्ट के अनुग्रह के प्रति उदासीनता अथवा अस्वीकार का प्रत्येक भाव आप

के अन्दर प्रतिक्रियायें लें आता है, आप के ह्रदय को कठोर और निष्ठुर बना देता है, इच्छा-शक्ति को अशक्त बना देता है, मानसिक शक्तियों,बुद्धि,विवेक आदि में हास ले आता है और न केवल आप की आत्म-समर्पण करने की इच्छा को कमजोर कर देता है, किंतु साथ साथ ईश्वर की कोमल-वाणी समक्ष आत्म-विसर्जन करने की योग्यता को भी घटा देता है, और सर्वथा अयोग्य बना देता है॥

अपनी अन्तर्चेतना के तुमुल संघर्ष को, अपने अन्तद्वंन्द्व को बहुत से लोग इस विचार के द्वारा नियंत्रित और शासित करना चाहते हैं कि वे बुरी आदतें जब भी चाहेंगे छोड़ देंगे। अत: वे

नि:संकोच ईश्वर कि कृपा कि खिल्ली उड़ाते हैं वे यह सोचते हैं कि अनुग्रह के आत्मा से मुँह मोड़ कर और शैतान कि ओर अपनी शक्तियों को प्रेरित कर देने पर, यदि कभी भीषण परिस्थिति भावे, तो तुरंत शैतान का पल्ला आड़ देना और ईश्वरोन्मुख हो जाना उनके बाँये हाथ का खेल है। किंतु यह बाँये हाथ का खेल नहीं, टेढ़ी खीर हैं। जीवन भर के अनुभव, शिक्षा और अभ्यास, स्वाभाव को ऐसा बना देते हैं कि अंतिम और आवश्यक परिस्थिति में यीशु को स्वीकार करना असंभव प्रतीत होता है और गिने लोग ही ऐसा कर सकते हैं॥

चरित्र में एक दुर्बल भाव, एक पाप पूर्ण इच्छा यदि लगातर रह जाये और पोषण

पा जाय तो वह इतना व्यापक हो उठेगा कि किसी न किसी समय सुसमाचार कि सारी शक्तियों और सद्भावनाओं को मटियामेट कर देगा। प्रत्येक पापमय कुकर्म आत्मा के ईश्वर-विरोधी भाव को प्रत्यय देता और शक्तिपूर्ण करता है। वह मनुष्य जो विधर्मियो कि तरह ईश्वर के न मानने में कट्टर हो अथवा ईश्वरीय सत्य के प्रति पाषाण की तरह उदासीन हो, केवल अपने बोये हुए कर्मो का फल काट रहा है। पाप के साथ खिलवाड़ करने और उसे नगराय समझने के विरुद्ध जो चेतावनी उस बुद्धिमान पुरुष ने दी है कि पापी “अपने ही पाप के बन्धनों से बंद रहेगा,” (नीतिवचन ५:२२) उस से बढ़ कर भीषण चेतावनी सारे बाइबल में और नहीं॥

यीशु हमें पाप से मुक्त करने को तत्पर हैं किंतु वे हमारी इच्छा-शक्ति पर दबाव नहीं डाल सकते। और यदि अपराध पर अपराध, पाप करते रहने पर इच्छा-शक्ति पापोन्मुख हो गई है, और हमें मुक्त होने कि “वास्तविक इच्छा” नहीं, तो वे कर ही क्या सकते हैं? यदि हम में उन के अनुग्रह पाने कि “इच्छा-शक्ति” नहीं तो उन के अनुग्रह पाने कि “इच्छा-शक्ति” नहीं तो उनका क्या वश? हमने उनके प्रेम को ठुकरा देने की जिद्द बना ली है और फल-स्वरुप हम विनष्ट हो चुके हैं। “देखो अभी वह प्रसन्नता का समय हे देखो अभी वह उद्धार का दिन है।” “यही आज

तुम उस का शब्द सुनो तो अपना मन कठोर न करो।” इब्री ३:७, ८॥

“मनुष्य तो बाहर का रूप देखता है पर रहती है।” वह उस मानव हृदय को देखता है जिस में रहस और रुदन, हर्ष और शोक की भावनाओं का द्वन्द्वमय स्फुरण होता है, जिस में चंचलता और भोगविलास के प्रति आकर्षण होता तथा जो कुत्सित भावों, पापों और धोखे बाजी आदि का केन्द्र स्थल है। ईश्वर उसके उद्धेश्य, प्रयोजन और लक्ष्यादि को जानता है। अपनी कलुषित आत्मा को, जैसी वह है वैसी ही लिए हुए, ईश्वर के पास दौड जाइये। सर्वज्ञ के सामने उसके सारे द्वार, वातायन और कोठरियों को खोल कर स्त्रोत्र कर्ता की तरह कह

उठिये, “हे ईश्वर मुझे जांच कर जान ले, मुझे परख कर मेरी चिन्ताओं को जान ले। और देख की मुझ में कोई संताप करनेहारी चाल है कि नहीं और सदा के मार्ग में मेरी अगुवाई कर।” भजन संहिता १३८:२३, २४॥

बहुत से लोग अपनी बुद्धि के द्वारा प्राप्त धर्म को मानने लगे हैं। वे भक्ति के उपासक हैं पर उनका हृदय स्वच्छ नहीं। आप की प्रार्थना इस प्रकार हुआ करे, “हे परमेश्वर मेरे भीतर स्थिर आत्मा नये सिरे से उपजा।” भजन-संहिता ५१:१०। अपनी आत्मा के साथ सर्वदा सैट-संबंध स्थापित कीजिए। आप उतना व्यग्र, उद्योगी तथा स्थिर-निश्चय होइये जितना आप तब

तक होते जब आप का जीवन खतरे में पड़ जाता। क्योंकि यह एक ऐसी बात है जो आप की आत्मा और ईश्वर के बीच का संबंध सदा के लिए निर्धारित कर देगी। यदि काल्पनिक आशा की प्रवचना में आप पड़े रहेंगे, कुछ चेष्टा वास्तविक रूप न करेंगे, तो आप का विनाश निश्चित है॥

ईश्वर के वचन का मनन प्रार्थना के रूप में कीजिए। वह वचन, ईश्वरीय विधान और यीशु के जीवन में साधुता और पवित्रता का सिद्धांत है और “जिस बिना कोई प्रभु को न देखेगा” (इब्री १२:१४) उसी को आप के समक्ष रहेगा। यह पाप के बारे आप को विश्वास दिलायेगा, और मुक्ति का पथ दिखलायेगा। उस पर

आप पूरा ध्यान दीजिये--मानो ईश्वर की वाणी ही आप की आत्मा को जगा रही हो॥

जब आप पाप के गुरुत्व को जन जाँय, जब आप अपने आप को नग्न और वास्तविक रूप में जान लें, तो हतास मत होइये। खिष्ट पापियों की रक्षा के लिए ही आये थे। हमें ईश्वर को अनुरूप बनाना नहीं, किंतु ईश्वर स्वयं यीशु में जगत को अपने अनुरूप बना रहा है। कैसा अद्भुत प्रेम है। वह अपने कोमल प्रेम के द्वारा अपने पथ भ्रष्ट पुत्रों को प्रेम की ओर आकृष्ट कर रहा है। इस जगत में कोई भी पिता अपने पुत्र की दुर्बलताओं और गलतियों को इतनी धीरता के साथ नहीं सहता जितनी

सहिष्णुता के साथ ईश्वर अपने उन पुत्रों की त्रुटियों को सहता हैं जिन्हें वह बचाना चाहता है। नियम-मग्न करनेवाले के साथ इतनी ममता के साथ और कोई बहस नहीं कर सकता। किसी भी मनुष्य की वाणी ने पथ-भ्रष्टों की वैसी मित्रते नहीं की जैसी ईश्वर करते हैं। उस की सारी प्रतिज्ञा, चेतावनी और उपदेश अपूर्व प्रेम के उच्छ्‌वास ही हैं॥

जब शैतान आप को यह कहने आये कि आप बड़े भारी पापी हैं तो अपने मुक्तिदाता की ओर निहार लीजिये और उन के गुण गाइये। उनकी ज्योतिर्मयी किरणों को देखिये और वाही आप की सहायता करेगी। अपने आप को स्वीकार कीजिये किंतु शत्रु से वह कहिये,“मसीह

यीशु पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया।” १ तीमुथियुस १:१५। और आप उनके अनुपम प्रेम के द्वारा बचा लिये जायेंगे। यीशु ने शमौन से दो कर्जदारों के बारे कुछ प्रश्न किया। एकने अपने स्वामी से थोड़ी रकम उधार ली थी लेकिन दूसरा मोटी रकम ऋण लिये हुए था। उन के स्वामी ने दोनों को क्षमा कर दिया। तब ख्रिष्ट ने शमौन से पूछा कि कौनसा कर्जदार उन्हें अधिक प्यार करेगा। शमौन ने उत्तर में कहा, “वह जिसका उसने अधिक छोड़ दिया।” लुक ७:४३। हम लोग बहुत बड़े पापी हैं, किंतु यीशु ने इस लिए मृत्यु का आलिंगन किया कि हम लोग माफ कर दिए जाँव। हमारे ईश्वर के समक्ष जाने के लिए उनके बलिदान की महिमा अपरंपार है।

जिन की गुरुतम और अधिक से अधिक बुराइयों को क्षमा की गई है, वे उन्हें सब से अधिक प्यार करेंगे और वे उनके सिंहासन के सब से निकट खड़े हो कर उनकी अप्रतिम प्राति और अपूर्व बलिदान की प्रशंसा करेंगे। जब हम ईश्वर के अनंत प्रेम की पूरी जानकारी हासिल कर लेते हैं तभी हम अपने पाप की गरिमा अच्छी तरह समझ सकते हैं। जब हम उस कड़ी की लम्बाई को देखते हैं जो हमारे लिए नीचे गिराई गई थी, जब हम अपने कल्याण हेतु खिष्ट के महान बलिदान की महिमा कुछ कुछ समझने लगते हैं, तो हमारा ह्रदय परिताप, शोक और करुणा से द्रवित हो जाता है॥

4 पाप-स्वीकार

“जो अपने अपराध छिपा रखता उसका कार्य सफल नहीं होता। पर जो उन को मान लेता और छोड़ भी देता उस पर दया की जाती है।” नीतिवचन २८:१३॥

ईश्वर की क्षमा प्राप्त करने के उपाय सीधे, उचित और विचारपूर्ण हैं। प्रभु हमें यह नहीं कहता कि हम कुछ ह्रदय विदारक काम कर लें फिर तब कहीं वह पाप क्षमा प्राप्त कर सकेगा। लम्बी और कष्टदायक तीर्थ यात्राओं में पिस जाना हमारे लिए आवश्यक नहीं। इन सब से हमारे पाप की क्षतिपूर्ति न होगी। लेकिन यदि मनुष्य अपने पापों को स्वीकार कर ले और उन से पूरी तरह हाथ धो ले तो

उसे करुणाकर का अनुग्रह निश्चय प्राप्त होगा। प्रेरित कहते हैं, “तुम आपस में एक दुसरे के सामने अपने अपने पापों को मान लो और एक दुसरे के लिए प्रार्थना करो जिस से चंगे हो जाओ” याकूब ५:१६। अपने पापों को ईश्वर के सामने स्वीकार करो। क्योंकि वे ही पापों को क्षमा कर सकते हैं। यदि आप ने अपने मित्र अथवा पडोसी का दिल दुखाया है, तो आप का कर्त्तव्य है कि आप अपनी गलती उसके सामने स्वीकार कर लें और फिर तब उसका कर्तव्य हे वह आप को क्षमा कर दे। तब इसके बाद आपको चाहिये कि आप ईश्वर से क्षमा याचना करें क्योंकि जिस भाई को आपने उब्ध किया, वह ईश्वर कि संपत्ति है, और उसे संतप्त कर आपने

त्रष्टा और मुक्तिदाता के विरुद्‍ध पाप किया है। तब यह सारा किस्सा हम लोगों के उस महान मध्यस्थ महायाजक खिष्ट के पास खुलता है जो “सब बातों में हमारी भाई परता तो गया तोभी निष्पाप निकला” और जो “हमारी निर्बलताओं में हमारे साथ दु:खी” भी होता है। इब्री ४:१५। वे सभी बुराइयों को ह्रदय से दूर कर हमें स्वस्थ और पवित्र बना सकता है॥

अपने अपराधों को स्वीकार कर अपनी आत्मा को जिन लोगों ने ईश्वर पर समर्पित नहीं किया, ऊन लोगों ने क्षमा प्राप्ति की ओर पहला कदम भी नहीं उठाया। यदि हम ने पश्चाताप का वह शोक भी प्रगट नहीं किया जिस शोक के

लिए शोक होता ही नहीं, और यदि हमने आत्म-त्याग तथा निस्सहाय हो कर अपनी दुर्बलता पर आठ आठ आँसू रो कर और पप्चरण को धिक्कार कर अपने पापों को स्वीकार नहीं किया; तो हम ने पाप की माफी के लिए कोई वास्तविक उद्योग नहीं किया। और जब कभी उद्योग नहीं किया, तो ईश्वर की शांति भी कभी न प्राप्त की। अपने विगत पापों से मुक्ति न पाने का केवल एक ही कारन हे और वह यह है कि हम अपने ह्रदय को विनीत नहीं बनाते और सत्य के अनुसरण में कार्य करने को तैयार नहीं होते। इस बात पर विशद शिक्षाएँ दी गई हैं। पापों कि स्वीकृति चाहे अकेले में हो, अथवा खुले आम, सदा ह्रदय से प्रेरित रहे और स्वच्छंद, निर्भीक रूप में व्यक्त

होवे। पापी को इसके लिए बाध्य करना उचित नहीं। फिर लापरवाही और उदासीन रूप में भी यह अच्छा नहीं। जिन्हें पाप से घृण न मालूम हो उन से जबर्दस्ती पाप की स्वीकृति कराना उत्तम नहीं। वह अपराध स्वीकृति जो अन्त स्थल के कुल किनारों को फोड़ती हुई अबाध गति में फूट पड़ती है अनंत दयामय ईश्वर के पास पहुँच जाती है। स्तोत्रकर्ता ने कहा हे, "यहोबा टूटे मनवालों को समीप रहता है और पिसे हाओं का उद्धार करता है।" भजन संहिता ३४:१८॥

वास्तविक पाप-स्वीकृति एक विशेष रूप की होती और उस में विशेष विशेष पापों की स्वीकृति होती है। वे ऐसे पाप हो

सकते हैं जो केवल ईश्वर के पास ही व्यक्त किये जा सकते हैं; वे ऐसे अपराध हो सकते हैं जिन्हें उन व्यक्तियों के सामने स्वीकार किया जा सकता है जिन पर वे अपराध हुए हों, अथवा वे सार्वजनिक रूप के हो सकते, और तब उसी सार्वजनिक रूप में उन्हें स्वीकार करना भी होगा। किंतु सभी किस्म की स्वीकृति ठीक ठीक, स्पष्ट और साफ हों तथा उस में उन्हीं पापों की मंजूरी हो जिन के कारन आप पापी हुए हैं॥

शमूएल के समय में इस्त्राएली लोग ईश्वर के विमुख हो गए। वे पाप के परिणाम से यातनाएं भोग रहे थे। क्योंकि उन्हों ने ईश्वर पर से विश्वास उठा लिया था, ईश्वर की उस शक्ति और

चातुरी को मिथ्या समझा था जिस से वह राष्ट्रों पर प्रभुत्व रखता है, और ईश्वर अपने शरणागतों की रक्षा और सहायता करता है इस पर भी भरोसा उनका न था। विश्व के महान शासक से वे विमुख हो गए और अपनी पड़ोसी जातियों की तरह ही शासित होने लगे। किंतु शांति प्राप्त करने के पहले उन्हों ने इस प्रकार स्पष्ट रूप में अपराध स्वीकार किया,"हमने अपने सारे पापों से बढ कर यह बुराई की कि रजा मांग है।" १ शमूएल १२:१८। जिस पाप के कारण वे पापी घोषित हुए थे, उसी पाप को उन्हों ने स्वीकार किया। उनकी कृतद्यता ने उसकी आत्मा को पीड़ित किया और ईश्वर से उन्हें पृथक किया॥

अपराध-स्वीकृति से ईश्वर खुश नहीं होता यदि उसके साथ सच्चा पश्चाताप और सुधार न हो। जीवन में निश्चय रूप से परिवर्तन होना आवश्यक हैं, ईश्वर जिन बातों से खिन्न और अप्रसन्न हों उन्हें छोड़ देना उचित है। यह तभी संभव है जब पाप पर हम सच्चा शोक प्रगट करेंगे। हमारा जो कर्तव्य है वह तो बड़े साफ शब्दों में व्यक्त किया गया है,"अपने को घो कर पवित्र करो मेरी आँखों के सामने से अपने बुरे कामों को दूर करो आगे को बुराई करना छोड़ दो, भलाई करना सीखो आत्म से न्याय करो उपद्रवी को सुधारो अपमूए का न्याय चुकाओ विधवा का मुकद्‌दमा लड़ो।" यशायाह १:१६,१६। "यदि दुष्ट जन बन्धक फेर देने अपनी लुटी हुई वस्तुएँ

भर देने और बिना कुटिल काम किये जीवनदायक विधियों पर चलने लगे तो वह न मरेगा निश्चय जीता रहेगा।” यहेजकेल ३३:१५। प्रायश्चित के बारे पावल ने कहा है,“सो देखो इसी बात से कि तुम्हें परमेश्वर की इच्छा के अनुसार उदासी हुई तुम में कितना यत्न और उजर और रिस और भव और लालसा और धुन और पलटा लेने का विचार उत्पत्र हुआ। तुमने सब प्रकार से यह दिखाया कि इस बात में तुम निर्दोष हो।” २ कुरिन्थियों ६:११॥

ईश्वर कि पवित्र पुस्तक बैबल में, सच्चा पश्चाताप और नम्रता के जिन आदर्शो का वर्णन किया गया है, वह प्रगट करते हैं कि सच्चे पाप-स्वीकार के आत्मा में

पापकृति के लिए कोई बहाना या स्व-निर्दोषपन और न्यायीपन की कोई कोशीश नहीं की जाती है॥

जब पाप नैतिक द्यान को नष्ट के देता है, तब अपराधी अपने चरित्र के दोषों का अनुभव नहीं कर सकता, और न तो अपने कुकृत्यों की गरिमा की ही कल्पना कर सकता हैं। फिर यदि वह पवित्र आत्मा की छत्रछाया में नहीं आता तो वह अपने पापों की ओर से चक्षु-विहीन रहता। ऐसे आदमी के पश्चाताप और अपराध स्वीकृति सच्ची और वास्तविक नहीं हो सकती। वह अपने अपराधों को स्वीकार करते समय प्रत्येक बार अपने कुकृत्य के कुछ बहाने पेश कर देगा और कहेगा कि इन विशेष कारणों और

परिस्थितियों के रहने पर वह अमुक काम कमी नहीं करता, अमुक अपराध कभी नहीं करता। और इस लिए वह फिर तिरस्कृत होता है॥

जब आदम और हवा ने निषिद्ध फल चख लिया तो वे शर्म और भय के मरे काँप उठे। पहले विचार जो उनके मन में आये वे केवल पाप के बहाना ढूँढने और मृत्यु की सजा से बच निकलने के उपाय के ही थे। जब ईश्वर ने उस पाप के बारे पूछा, तो आदम ने अपराध का कारण ईश्वर और सहचरी को बताते हुए उत्तर दिया, "जिस स्त्री को तू ने मेरे संग रहने को दिया उसी ने उस वृक्ष का फल मुझे खाने को दिया सो मैं ने खाया।" उत्पत्ति ३:१२। उस स्त्री ने अपराध का दोष सर्प

के माथे रखा और कहा,“सर्प ने मुझे बहका दिया सो मैं ने खाया।” उत्पत्ति ३:१३। आपने सर्प को क्यों बनाया? आपने उसे एदेन की बारी में आने क्यों दिया? ये ही प्रश्न उसने अपने पाप के बहाने में किए, और इस तरह अपने पतित होने का सारा दोष ईश्वर के ही मत्थे रख दिया। आत्म-निर्दोष-करण के भाव का जन्म झूठे पिता से ही हुआ और अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने की यह प्रकृति आदम के सारे पुत्रों और पुत्रियों में पी जाती है। इस प्रकार की अपराध-स्वीकृति स्वर्गीय आत्मा द्वारा प्रेरित नहीं और ईश्वर द्वारा मान्य भी नहीं। सच्ची ग्लानी, सच्चा पश्चाताप तो मनुष्य के मुँह से सारे दोष उगला देगा। उन्हें वह अपने मत्थे दिया, और बगैर

धोखे बाजी और बहाने बाजी के मंजूर करेगा। उस दिन कर उगाहने हरे की तरह वह भी अपनी आँखे शर्म से नीचे किए हुए चिल्ला उठेगा, “हे ईश्वर! मुझ पापी पर दया कर।” और जो अपने अपराधों को मान लेंगे वे बच जायेंगे क्योंकि यीशु मसीह अपनी रक्त-बूंदों से पश्चातापी आत्मा के उद्धार के निमित्त निवेदन करेंगे॥

सच्चे प्रायश्चित और विनय के शब्दों के उदाहरण में अपराध-स्वीकृति की वह भावना व्यक्त होती है जिस में अपराधों के लिए कोई बहाना नहीं रहता, और न आत्म-निर्दोषकरण की ही कोई चेष्टा दीख पड़ती है, पावल ने अपने को निर्दोष बनाने की कोई कोशीश नहीं की; उसने

अपने पापों का चित्रण सारी कालिमा के साथ किया, और अपने अपराध घटाने की चेष्टा नहीं की। वह कहता है, “मैं ने बहुत से पवित्र लोगों को जेलखानों में डाला और जब वे मार डाले जाते थे तो मैं भी उन के विरोध में अपनी सम्मति देता था। और हर सभा में मैं उने ताड़ना दिला दिया कर यीशु की निन्दा करवाता था यहाँ तक की क्रोध के मरे ऐसा पामल हो गया कि बाहर के नगरों में भी जाकर उन्हें सताता था।” प्रेरित २६:१०, ११। वह यह घोषित करते हिचकता नहीं कि “मसीह यीशु, पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया जिन में सब से बड़ा मैं हूँ।” १ तीमोथी १:१५॥

विनीत और टूटे हुए दिल में जब वास्तविक पश्चाताप के शोक भर जायेंगे तो ईश्वर के प्रेम और कलभेरी के अद्वितीय बलिदान की महत्ता पर अपार श्रद्धा भर जावेगी। फिर जैसे योग्य पुत्र अपने स्नेही पिता के सामने सारी बातें खोल कर कह देता है, वैसे ही वास्तविक प्रायश्चित करनेवाला मनुष्य अपने सारे पाप ईश्वर के सामने खोल कर रख देगा। क्योंकि यह लिखा है, “यदि हम अपने पापों को मान ले तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में सच्चा और धर्मी है।” १ योहन १:६॥

5 समर्पण

ईश्वर ने यह वचन दिया है,“तुम मुझे ढूँढोगे और पाओगे भी क्योंकि तुम अपने सारे मन से मेरे पास आओगे।” यिर्मयाह २६:१३॥

ईश्वर को सम्पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण कर देना आवश्यक है, और नहीं तो उनके अनुरूप होने के लिए जो परिवर्तन आवश्यक है, वह हम में हो ही नहीं सकते। हम अपने स्वाभाव से ही ईश्वर-विमुख हैं। पवित्र आत्मा ने हमारी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है, “अपने अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे;” “तुम्हारा सिर घावों से भर गया और तुम्हारा सारा ह्रदय दु:ख से भरा है;”

"नख से सिर लों वहीं कुछ अयोग्यता नहीं।" हम लोग शैतान के फंदे में बुरी तरह फँस गए हैं। उसकी इच्छा के अनुसार उसके द्वारा बन्दी किये गए हैं। ईश्वर हमें चंगा करना तथा मुक्त करना चाहते हैं। किंतु इसके लिए अपात-परिवर्तन की आवश्यकता है। हमें अपने समस्त स्वाभाविक वृत्तियों में पुनर्जीवन लाना पड़ेगा। अतएव हमें ईश्वर के समक्ष पूर्ण समर्पण कर देना उचित है॥

'अहं' के विरुद्ध जो संग्राम होता है वह संसार का सब से भीषण युद्ध है। आत्म-समर्पण करने में, 'अहं' के शमन में, संघर्ष का होना आवश्यक है। फिर भी आत्मा को ईश्वर के पांवों पर समर्पित

कर देने के बाद ही उस में नई पवित्रता का प्रकाश फैल सकेगा॥

जैसे शैतान ने चित्रित किया है, वैसा ईश्वर का शासन नहीं जिस में सबों को बिना विचार के ही अंधों की तरह सर झुका लेना पड़ता हो। उनका शासन-विधान तो ऐसा है कि बुद्धि और अंतर्चेतना दोनों को अच्छा जचता है। सृष्टा ने सारी सृष्टि को आमंत्रित कर कहा है। "आओं हम आपस में वादविवाद करें।" यशायाह १:१८। ईश्वर अपने प्राणियों पर स्वेच्छावारियों कि तरह जबर्दस्ती नहीं करता। वैसे पूजन अर्चन उसे स्वीकार नहीं जो अपनी ख़ुशी और पूरे हृदय से न किए गए हो। जबर्दस्ती आत्म-समर्पण करा लेने से ना तो

मस्तिष्क का स्वस्थ विकास होगा और न चरित्र का शुद्ध गठन ही हो पाएगा। यह तो मनुष्य को मशीन बना देगा। और ईश्वर का उद्धेश मनुष्य को मशीन बना देना नही है। उसकी इच्छा तो यह है कि सृष्टि कि श्रेष्टतम वस्तु मनुष्य उन्नति और विकास कि परम सीमा तक पहुँच जाये। वह हम लोगों को आमंत्रित कर यह अनुनय-विनय करता है कि हम अपने को उसके अनुग्रह पर समर्पित कर दें ताकि उसके सद्राव और सौजन्य प्राप्त कर सकें और उसके अनुरूप कर सकें। अब पाप की श्रृंखलाओं से मुक्त होने और ईश्वरीय सृष्टि की गौरवपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर अगत में स्वच्छन्द विहार करने के लिए श्रेयस्कर मार्ग को

चुनना पूरी तरह हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर करता है॥

क्या आप को यह मालूम होता है कि खीष्ट को सब का सब अधीन करना बहुत बड़ा बलिदान है? आप अपने ही को यह प्रश्न कीजिये “खिष्टने मुझे क्या दिया है?”

जब हम अपने आप को ईश्वर को सौंप देते हैं तो हमें उन सभी वस्तुओं का पूर्ण परित्याग कर देना आवश्यक है, जिन के कारण हम उस से अलग किये जा सकतें हैं। मतलब मुक्तिदाता ने कहा है,“तुम में से जो कोई अपना सब कुछ त्याग न करे वह मेरा चेला नहीं हो सकता।” लूक १४:३३। जो कुछ भी हृदय को ईश्वर से

विमुख करें, उसे छोड़ दीजिए। अनेक लोग धन-देवता की मूर्ति की पूजा करते हैं। ऐसे लोगों की धन-लिप्सा, वैभव की लालच और ऐश्वर्य की तृष्णा वह सोने की जंजीर है जिस के द्वारा शैतान उन्हें बांध रखता है। दूसरी श्रेणी के लोगों के द्वारा यश और सांसारिक मर्यादा की पूजा होती है। तथापि तीसरे प्रकार के लोग स्वार्थ-सुख और निरंकुश जीवन के भोग-विलास की पूजा करते हैं। किंतु ये सब गुलामी की जंजीर हैं और इन्हें तोड़ना कर्तव्य है। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि हम आधे ईश्वर के रहें, आधे संसार के। जब तक हम पूरी तरह ईश्वर के नहीं होते तब तक हम ईश्वर के पुत्र ही नहीं॥

कुछ ऐसे लोग भी है जो ईश्वर की सेवा करने को इच्छुक तो हैं किंतु उन्हें ऐसा विश्वास है कि वे उसके विधान स्वयं ही स्वीकार कर लेंगे। ऐसे लोगों कि हृदय में खिष्ट के प्रति प्रगाढ़ प्रीति नहीं। वे ईसाइयों के निश्छल और निर्मल जीवन इस लिए पावन करना चाहते है ताकि उन्हें ईश्वरीय आदेश के अनुसार स्वर्ग मिल जाए। ऐसे धर्म का कुछ मूल्य नहीं। किंतु जब यीशु का वास हृदय में होता है, तो अन्तरात्मा उनके प्रेम में ऐसा विभोर हो उठता है, हृदय उनके समागम में ऐसा उल्लासपूर्ण हो उठता है कि वे उन में तादात्म्य लाभ कर उठते हैं। इस तादात्म्य में ‘अहं’ का विस्मरण होता है, आत्म भाव उस परमात्म भाव में तिरोहित हो जाता है। यीशु के प्रति प्रेम

क्रियाशीलता का उद्रम-स्थान है। जिन्हें ईश्वर पर प्रगाढ़ अनुराग है, वे यह नहीं पूछते कि ईश्वरीय-विधान में कम से कम कितना समर्पण करना आवश्यक है। ऐसे लोगों का मान दंड अल्प अथवा न्यूनतम श्रेष्टता की प्राप्ति नहीं। एसे लोग तो उच्च से उच्चतम और श्रेष्ट से श्रेष्टतम को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं ताकि वे सर्वोशत: मुक्तिदाता में आत्मसात हो जाएं पूरी हार्दिक इच्छा से वे सर्वस्व समर्पित करते है, उसी के महत्त्व के अनुरूप लगन और रूचि प्रदर्शित करते है। इस प्रगाढ़ प्रेम के बिना यीशु पर प्रेम दिखाने की सारें बातें ढकोसला हैं, योथे तर्क हैं और कोरी नीचता है॥

क्या आप यह सोचते है कि यीशु पर सर्वस्व अर्पित कर देना महान बलिदान है। तब आप यह विचार कीजिये कि यीशु ने आप को क्या दिया है? ईश्वर पुत्र ने हम लोगों की मुक्ति के लिए सब कुछ समर्पित कर दिया: जीवन दिया प्रेम दिया और यातनाए सहीं। अब क्या हम नीच लोगों को उन के इतने प्रपाढ़ प्रेम पाकर भी अपने हृदय उन्हें समर्पित करने में हिचकिचाना चाहिये? अब तो हम लोग अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में उन के अनुग्रह के फल-स्वरुप आनंद मना रहे हैं, इसी का यह परिणाम है कि जिस अज्ञानांधकार और क्लेश के भीषण गर्त से हम उंबर आए हैं उस की कल्पना नहीं करता और उसे कुछ समझते ही नहीं। जिन के हृदय स्थल को हमारे पापों

ने बांध डाला, जिन के शरीरपर हमारे अपराधों ने शतशत भालाये चुभोये उन्हीं की कृपा दृष्टि के हम इच्छुक हों, और उन्हीं की प्रीति और बलिदान का तिरस्कार करे जब हम लोगों ने यह जान लिया कि हमारे आलोकमय प्रभु ने कितना महान प्रयाच्चित किया था, कितनी आदर्श आत्मवज्ञा को थी, तब क्या अपने जीवन में संघर्ष और आत्मवज्ञा के द्वारा वन्नत होना हम नापसंद करेंगे? घमंडी लोग यह पूछते हैं कि ईश्वर के ग्रहण और स्वीकार करने के पहले ही हम लोग क्यों प्रायश्चित में दुबे और अपने आप को समर्पित कर दें? इस के उत्तर में मेरा नम्र निवेदन हैं कि आप यीशु कि ओर देखे। वे सर्वथा निष्पाप थे, नहीं, वे तो स्वर्ग के

चिर-राजकुमार थे। किंतु मनुष्य के कल्याण के हेतु वे मानव-जाति के पाप की तरह घोषित हुए। “वह अपराधियों के संग गिना गया पर उसने बहुतों के पाप का भार उठा लिया और अपराधियों के लिए बिनती करता है।” यशया ५३:१२॥

अब जरा यह सोचिये कि जब हम सभी कुछ अर्पित कर देते हैं तो वास्तव में क्या छोड़ते हैं? और वह भी इस लिए अर्पित करते हैं कि यीशु उसे पवित्र बनावे, अपने लोहू से धोकर स्वच्छ बनावे और अप्रतिम प्रेम से उज्जवल और अमर। फिर भी लोग सर्वस्व अर्पण करना टेढ़ी खीर समझते हैं। ऐसा सुनना शर्म कि बात है, ऐसे लिखने पर धिक्कार है॥

ईश्वर हम से यह भी नहीं कहता कि जो वास्तुएँ अपने लाभ कि हैं उन्हें भी समर्पित कर दीजिये। ऐसा वह कह भी नहीं सकता। क्योंकि जो कुछ भी वह करता और कहता है उसका एकमात्र लक्ष्य हमारा कल्याण ही हे। जिन्हों ने यीशु को अपनी भलाई के लिए नहीं ग्रहण किया हैं, उन लोगों के बीच, ईश्वर करे, यह सुबुद्धि आ जाए कि खिष्ट उन्हें अत्यधिक-मूल्यवान और प्रचुर परिमाण में कल्याणकारी वास्तुएँ दे सकते हैं, और वैसी वास्तुएँ वे अपनी सारी सामर्थ्य और शक्ति से नहीं प्राप्त कर सकते। जब मनुष्य ईश्वर की विचार-परंपरा के विरुद्ध सोचता और कार्य करता है, तो वह अपनी आत्मा पर

ही घातक चोटें पहुँचाते हैं, उस पर अन्याय और अत्याचार करता है॥

इस संभ्रम में पड़ना कि ईश्वर अपने पुत्रों को क्लेश में डूबें देख प्रसन्न होता है, भरी भूल है। समस्त स्वर्ग मनुष्य के आनंद के लिए उद्योगशील है। हमारे परमपिता किसी भी मनुष्य के लिए आनन्द के कपाट बन्द नहीं करते। स्वर्गीय घोषणा सदा से हमें इसी ओर सचेत कराती है कि हम उन विश्वासमय पदार्थों का त्याग करें जो क्लेश और शोक के कारन हैं और जो आनंद और स्वर्ग के द्वार हमारे लिए बंद कर देते हैं। संसार के मुक्तिदाता ने मनुष्य को उसी रूप में ग्रहण किया है, जिस रूप में वह अपनी सारी कमजोरियों, दुर्बलताओं,

त्रुटियों और दोषों के साथ है। वे न केवल पापमुक्त करते और मुक्तात्मा बनाते हैं किंतु उन सबों की आन्तरिक अभिलाषाएँ भी पूरी करते हैं जो उनके समक्ष विनीत और नम्र हैं। जो उनके पास जीवन की रोटियाँ मांगने आवे उन्हें शांति और विश्राम देना तो उनका परम कर्तव्य है। वे केवल यह चाहते हैं कि हम उन्हीं कर्तव्यों में रत रहें जो हमें आनंद की छोटी पर ले चलें और जिन्हें आद्या-उल्लंघन करनेवाले कभी सपनों में भी देख न सकें। आत्मा का वास्तविक सत्य इसी में है, उनका यथार्थ आनंद पूर्ण जीवन इसी में है कि अन्तस्थल में यीशु की वह घवल ज्योतिर्मयी आशापूर्ण किरणों उद्धासित होती रहे॥

अनेक लोग यह पूछते हैं कि किस प्रकार ईश्वर को आत्म-समर्पण किया जाय। आप अपने आप को उसे सौंप तो देना चाहते हैं किंतु आप कि नैतिक शक्ति दुर्बल है, आप संशय के पास में आबद्ध हैं और पापमय जीवन की आदतें आप को शिकंजों में अकड़े हुई हैं। आप की प्रतिज्ञाएं और निश्चय वालू की रस्सी की तरह निरर्थक हैं। आप अपने विचारों, आवेशों, मोह आदिपर काबू नहीं कर सकते। जब आप यह जन जाते हैं कि आपने अपने सारे वचन भंग किये हैं, प्रतिज्ञाएं निभाई नहीं हैं, तो आप को अपनी सच्चाई पर विश्वास नहीं होता, आप की इच्छा-शक्ति दुर्बल पड़ जाति है, आप अपनी शक्तिसमर्थ्य पर भरोसा नहीं कर पाते और आप यह सोचने

लगते हैं कि ईश्वर आप को ग्रहण नहीं करेगा। किंतु इतना हतोत्साह और भग्नहृदय होना आवश्यक नहीं। जिस चीज की आप को जरुरत है वह है इच्छा-शक्ति की समझ। मनुष्य स्वभाव की निधारिणीशक्ति, निर्णयात्मकशक्ति का केन्द्र और निश्चयात्मक-शक्ति का स्त्रोत्र यही हे। सारा दारोमदार इसी इच्छाशक्ति के ऊपर है। ईश्वर ने निश्चय करने की शक्ति मनुष्य को दे दी है, अब वह मनुष्य पर है कि उसका उपयोग करे, न करे। आप अपने हृदय में परिवर्तन न ला सकेंगे, इसे मान लिया। आप उन्हें अपने हृदय के उद्धार और अनुराग अपनी सामर्थ्य पर अर्पण न कर सकेंगे, यह भी मान लिया। किंतु फिर भी उनकी सेवा करने का निश्चय आप कर

सकते हैं, यह मार्ग आप अपने ही बल पर चुन सकते हैं। आप अपनी इच्छाशक्ति उन्हें अर्पित कर सकते हैं। फिर वे आप के अंन्तरस्थल में ऐसी प्रेरणा भार देंगे कि आप उनके ही अनुसार कार्यों में लीन होंगे। इस प्रकार आप का पूरा स्वभाव खिष्ट के आत्मा के अधीन प्रकाशित हो उठेगा; आप के अनुराग उन पर केन्द्रित होंगे और भाव के विचारमय आदि सब कुछ उन के अनुरूप हो जायेंगे॥

सच्चरित्रता और शुद्धात्मा को लालसा करना बड़ा उत्तम है। किंतु लालसा यदि केवल लालसा बन कर ही रही तो किस काम की। अनेक लोग ईसाई बनने की लालसा करते हुए भी पथ-भ्रष्ट हो

विनष्ट हुए। क्योंकि ये लोग उस स्थिति तक पहुँच ही नहीं सके जहाँ अपनी इच्छाशक्ति का ईश्वर की इच्छा-शक्ति में पूर्ण विसर्जन होता हैं। अब ये ईसाई होने के मार्ग को चुन नहीं सकते॥

इच्छाशक्ति को उचित उपयोगिता से जीवन में अद्वितीय परिवर्तन लाया जा सकता है। अपनी इच्छा-शक्ति को यीशु के चरणों में समर्पित कर देने पर आप उस शक्तिशाली और पराक्रमी वीर से मित्रता स्थापित कर लेते हैं जो सारे संसारी पराक्रमों और शक्तियों के ऊपर हैं। तब आप को ऊपर से शक्ति मिलेगी जिस से आप दृढ़ और धीर बनेंगे। इस प्रकार सदा ईश्वर के समक्ष आत्म समर्पण द्वारा आप अभिनव जीवन,

नूतन उल्लास और नवीन आशाएँ प्राप्त कर सकेंगे तथा धार्मिक-विश्वास से ओत-प्रोत भी हो उठेंगे॥

6 विश्वास और ग्रहण

जब आप की अन्तर्चेतना पवित्र आत्मा से जाग्रत हो गई तो आपने पाप की कालुष- कालिमा का कुछ अंश देख लिए होंगे; उनकी शक्ति, उनके दुष्परिणाम, तज्जनित कष्ट आप कुछ समझ लिए होंगे;।आप उन पर घृणापूर्ण दृष्टि डालेंगे। तब आप यही समझ लेंगे कि पाप ने आप को ईश्वर से दूर फ़ेंक दिया था और दुभावनाएँ और दुवृत्तियाँ आप को जकडे हुए थीं। इस संग्राम में आप ने यह महसूस किया होगा कि पाप से बचने के लिए जितना तुमुल संघर्ष आप करते होंगे, उतनी दुर्बलता आप को अशक्त करती होगी। तब आप के उद्देश्य कुत्सित थे, हृदय कलुषित था। आप ने

यह देखा होगा कि आप का जीवन स्वार्थ और पाप का विशाल जाल है। आप क्षमा-प्राप्त करने के लिए, स्वच्छ और विकारहीन होने के लिए, मुक्त और निष्पाप होने के लिए प्राणपन से विकल रहे होंगे। ऐसी अवस्था में कौन सी वस्तु सब से आवश्यक है? ईश्वर के साथ एकतान होने के लिए, उनके अनुरूप बनने के लिए--क्या करना उचित है?

ऐसी अवस्था में आप को शांति कि आवश्यकता है--स्वर्ग से क्षमा, शांति, और प्रेम का स्त्रोत यदि आकर आत्मा में उमड़ पड़े तो आप निर्द्धन्द्व हो जाएँ। इन वस्तुओं को मन खरीद नहीं सकता, विद्या-बुद्धि प्राप्त नहीं कर सकती, विवेक ला नहीं सकता। आप अपनी

चेष्टाओं से ही इन्हें प्राप्त करने की कभी भी आशा कर नहीं कर सकते। किंतु ईश्वर इन वस्तुओं को आप को उपहार स्वरुप भेंट करते है,“बिन रुपये और बिन दाम।” यशायाह ५५:१। ये आप की ही हैं, बस अपने हाथ फैलाइए और इन्हें दोनों हाथों लूटिये। प्रभु ने कहा है,“तुम्हारे पाप चाहे लाही रंग के हो तोभी वे हिम की नाई उजले हो जाएंगे और चाहे लालरंग के हो तोभी वे ऊन के सरीखे हो जाएंगे” यशायाह १:१८। “मैं तुम को नया मन दूंगा और तुम्हारे भीतर नया आत्मा उपजाऊंगा।” यहेजकेल ३६:२६।

आपने अपने पापों को स्वीकार कर लिया है, और हृदय से उन्हें अलग कर दिया है। आपने अपने आप को ईश्वर को अर्पित

कर देने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। बस, अब आप उनके समक्ष जाइये और उनसे कहिये, ये निश्चय आप को नवीन हृदय भी देंगे। अब आप विश्वास कीजिए कि उन्हों ने ऐसा इस लिए किया क्योंकि उन्होंने वचन दिया था। यही शिक्षा यीशु ने हमें इस संसार में आकर दी। जिन वरदानों के देने का वचन ईश्वर ने दिया है, वे वरदान हमें निश्चय प्राप्त होंगे। यीशु ने उन मरीजों को चंगा किया, जिन्हों ने यीशु की आरोग्यसाधक शक्तियों पर विश्वास किया। यीशु ने उन लोगों की मदद वैसी वस्तुओं में की जो देखी जा सकती थीं, और इस तरह उन लोगों के अंदर यह विश्वास भी जमाया कि यीशु ऐसी वस्तुओं में भी सहायता कर सकता है जो देखी नहीं जा सकतीं।

अपने पापों की क्षमा कर देने की शक्ति की ओर लोगों का विश्वास पक्का किया। लकवा मारे हुए मनुष्य को जब यीशु ने आराम किया तो बीशुने कहा,“पर इस लिए कि तुम जानो कि मनुष्य के पुत्र को पृथिवी पर पाप क्षमा करने का अधिकार है (उसने झोले के मारे से कहा) उठ और अपनी खाट उठा कर अपने घर जा।” मति ९:६। यीशु के आश्यर्यजनक कार्यो का उल्लेख योहन ने भी किया है,“पर ये इस लिए लिखे गए हैं कि तुम विश्वास करो कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र मसीह है और विश्वास कर के उसके नामसे जीवन पाओ।” योहन २०:३१॥

सच्ची कसौटी यहाँ हे। यदि हम खीष्ट में बने रहे, तो हमारी भावनाएँ, हमारे

विचार, और हमारे काम, परमेश्वर के पवित्र नियम कि आज्ञाओं में दर्शायी हुई उसकी इच्छा के साथ एकताल हो सकते हैं।

बाईबल में वर्णित सीधे-साधे चंगे करने के तरीकों से हम यही सीखते हैं कि पाप की क्षमा के लिए हमें किस प्रकार उन पर विश्वास करना चाहिये। बेतहसदा के पश्चाताप के रोगी की कहानी को ही लीजिये। वह दरिद्र रोगी निस्सहाय थी, बिल्कुल असमर्थ था। उसने अपने अंगों से अड़तीस साल से काम नहीं लिया था। फिर भी यीशु ने उससे कहा "उठ अपनी खाट उठा कर चल फिर।" गरीब मरीज यह कह सकता था,"प्रभु यदि आप मुझ में इतनी शक्ति भार दें कि अंग चलने

फिरने लगें, तो आप कि आज्ञा सर-आँखों पर रख कर मानूं।” लेकिन नहीं, उसने ऐसा नहीं कहा। उसने यीशु के शब्दों पर पूरा विश्वास किया कि वह पूरी तरह चंगा हो गया है, और तुरंत उठ खड़ा हुआ। उसने चलने की इच्छा की, और वह सच्मुच चल भी पड़ा। वह यीशु की आज्ञा पा कर आज्ञा मानने को प्रवृत्त हुआ और ईश्वर ने उसे शक्तिसंपन्न किया। वह चंगा हो गया॥

उसी तरह आप एक पापी हैं। आप अपने विगत पापों का प्रायश्चित नहीं कर सकते, आप हृदय बदल कर पवित्र नहीं कर ले सकते। किन्तु ईश्वर ने ख्रिष्ट के द्‍वारा इन सारे कार्यों को संपादित करने का वचन दिया है। आप उन की प्रतिज्ञा

पर विश्वास कीजिए। अपने अपराध स्वीकार कर लीजिये और अपने आप को ईश्वर के पास समर्पण कर दीजिये। उन की सेवा करने की इच्छा कीजिए। जितने अंश में निश्चय होकर आप ये सारे काम करेंगे, ईश्वर उतनी ही शीघ्रता से अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। आप उनकी प्रतिज्ञा पर विश्वास कर लें--आप यह विश्वास कर लें कि आप के समस्त पाप क्षमा कर दिए और आप निर्मल, निष्कलंक हो गए--तो ईश्वर का वचन सर्वोशत: पूर्ण हो जायेगा। आप सचमुच पूर्ण हो उठेंगे। पक्षाघात-पीड़ित व्यक्त को जैसे खिष्ट ने चलने कि ताकत दे दी, क्योंकि उसने यीशु पर विश्वास किया, उसी तरह यदि आपने ईश्वर पर विश्वास किया तो बस

आप को पूर्ण हो जाने की शक्ति मिल गई॥

आप अपनी पूर्णता के अनुभव के लिए ठहरीये नहीं; किन्तु वह उठिये, “मैं आप के वचन पर विश्वास करता हूँ। मैं इस लिए नहीं विश्वास करता हूँ क्योंकि मैं उसकी सत्यता का अनुभव कर रहा हूँ, वरण इस लिए विश्वास करता हूँ क्योंकि यह ईश्वर का वचन है॥”

यीशु कहता है, “जो कुछ तुम प्रार्थना करके मांग प्रतीति कर लो कि तुम्हें मिल गया और तुम्हारे लिए हो जाएगा।” मार्क ११:२४। इस वादा के साथ-साथ एक शर्त यह भी लगी है कि आप की प्रार्थना ईश्वर के इच्छानुसार हो, तभी,

ऐसे नहीं। लेकिन ईश्वर की इच्छा तो यह है ही कि हमारे पाप धुल जाँय, हम उनके सुपुत्र हो जाँय और हम पवित्र जीवन यापन करने के योग्य बन जाँय। अतएव हम इन उत्तम उपहारों को माँग सकते हैं, और यह विश्वास कर सकते है कि ये उपहार हमें प्राप्त हो गए। और फिर ईश्वर को धन्य धन्य कह उठें कि ये उपहार वास्तव में हमें मिल गए। हम लोगों को तो यह अधिकार है कि हम यीशु के सम्मुख जाँय; और व्यवस्था के समक्ष बिनाशार्म और लोभ के डटे रहें। "सो अब जो मसीह यीशु में मुझे पाप की और मृत्यु की व्यवस्था से स्वतन्त्र कर दिया।" रोमी ८:१॥

अब से आप अपने मालिक नहीं, आप को कीमत चुका कर ख़रीदा गया है।
“तुम्हारा छुटकारा चांदी सोने अर्थात नाशमान वस्तुओं के द्वारा नहीं, पर निर्दोष और निष्कलंक मेमने अर्थात मसीह के बहुमोल लोहू के द्वारा हुआ।” १ पितर १:१८, १६। ईश्वर पर भरोसा करने और विश्वास दृढ़ करने के सीधे से काम के कारण, पवित्र आत्मा आप के हृदय में नूतन जीवन भर देंगे, आप के प्राणों में नवीन स्फूर्ति छा जायेगी। आप तब ईश्वर के परिवार में एक नवीन शीशु की तरह आ जावेगे और ईश्वर आप को उतना ही प्यार करेंगे जितना वह और पुत्रों को करते हैं॥

अब जब आप ने अपने को यीशु को समर्पित कर दिया है, तो फिर उनसे अलग न होइये, उनसे दूर मत जाइये किंतु प्रतिदिन प्रार्थना कीजिए कि मैं खिष्ट का हूँ, मैंने अपने को उनके चरणों पर समर्पित किया। और उन से उनके आत्मा और अनुग्रह कि भावना किजिये। आत्म-समर्पण के द्‌वारा तथा ईश्वर पर विश्वास करने के कारण आप ईश्वर के पुत्र हो गए; अब आप को ईश्वर में ही जीवन यापन करना होगा। एक प्रेरित ने कहा है,"तो जैसे तुमने मसीह यीशु को प्रभु करके मान लिया है वैसे ही उसी में चलो।" कुलुस्सी २:६॥

कुछ लोगों कि यह धारणा है कि प्रभु की आशिष प्राप्त करने के पहले परीक्षार्थी के

रूप में कुछ समय तक रहना और ईश्वर के समक्ष यह प्रमाणित कर देना कि सुधार हो गया है और अब शुद्ध हैं, बहुत आवश्यक है। किंतु नहीं, यह धारणा गलत है। वे लोग ईश्वर की कृपा और अनुग्रह अभी हो मांग सकते हैं। दुर्बलताओं में मदद देने के लिए ईश्वर का अनुग्रह अथवा खिष्ट के आत्मा को सहायता अनिवार्य है। क्योंकि इसके न रहने पर कुवासनाओं के विरुद्ध डटे रहना असंभव है। यीशु की तो इच्छा यही है कि हम लोग अपने वास्तविक नग्न रूपमें, अपनी यथार्थ अवस्था में, प पो निस्सहाय और परावलंबी रूप में ही उनके समक्ष जाँव। अपनी सारी दुर्बलताओं, मूर्खताओं, और पापों के साथ पश्चाताप करते हुए जा कर उनके

पैरों पर गिर जाना हमारे लिए आवश्यक है। फिर तो उनकी महत्ता यही है कि अपने प्रेम के बाहु-पांश में वे हमें जकड लें, हमारे घावों पर महलम-पट्टी जगायें और सारी कुत्सित-भावनाओं को धोकर हमें निर्मल और पवित्र कर डालें॥

इस स्थान पर हजारों लोग असफल हुए हैं। वे यह विश्वास नहीं करते कि यीशु प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग क्षमा करते हैं। इन लोगों को ईश्वर के वचन पर अक्षरश; भरोसा नहीं। जिन लोगों ने ईश्वर की शर्ते पूरी की हैं, उन्हें तो यह अधिकार मिल गया है कि वे यह जान जाँय कि पाप एक एक करके क्षमा होता है। इस भ्रम को दूर कीजिये कि ईश्वर के वचन आप के लिए नहीं है। ये वचन

प्रत्येक पश्चाताप में डूबें हुए पापी के लिए हैं। खीष्ट के द्वारा प्रचुर शक्ति और अनुग्रह रखे गए है ताकि सेवक-दूतों के द्वारा विश्वासी लोगों में संबल और शक्ति भर जाँय। चाहे कोई कितना भी गर्हित पापी क्यों न हो, वह इतना नीच नहीं कि यीशु की शक्ति, पवित्रता और शुचिता प्राप्त नहीं कर सकता। यीशु उनके लिए ही मरे; और वे ही उनसे वंचित रहें। वे तो ऐसे लोगों के पाप-पंक में लथपथ और गँदे कपडे उतार फेंकने, तथा उनकी जगह शुचिता के उज्ज्वल वस्त्र पहनाने को कब से तैयार बैठे हैं। वे तो कहते हैं, मरो नहीं, जीवित रहो॥

जिस तरह साधारण मनुष्य एक दूसरे के प्रति व्यवहार करते हैं, उस तरह ईश्वर

हमारे प्रति व्यवहार नहीं करता। उसके विचार के मूल में करुना, प्रेम, और सच्ची सहानुभूति रहती है। वे हमेशा यह कहते है,“दुष्ट अपनी चालचलन और अनर्थकारी अपने सोच विचार छोड़ कर यहोवा की ओर फिरे और वह उस पर दया करेगा वह हमारे परमेश्वर की ओर फिरे और वह पूरी रीति से उसकी क्षमा करेगा।” यशायाह ५५:७। “मैं ने तेरे अपराधों को कासी घटा के समान और तेरे पापों को बादल के समान मिटा दिया है।” यशायाह ४४:२२। “प्रभु यहोवा की यह वाणी है कि जो मरे उस के मरने में मैं प्रसन्न नहीं होता इस लिए फिरो तब तुम जीते रहोगे।” याहजकेल १८:३२। ईश्वर ने जो वचन दिए हैं, उन्हें चुरा लेने को शैतान सदा तैयार हे। वह तो आप के

हृदय को प्रतिभासित करनेवाली आशा और जीवन की प्रत्येक किरण को मिटा देने की चेष्टा में है। आप का कर्तव्य है कि आप उसे ऐसा करने से रोके। मोह से लिप्त कराने वाले उस शैतान की ओर ध्यान न दें। वरन आप यह कहें, “यीशु इस लिए मरे कि मैं अमर बनूं”। वे मुझे प्यार करते हैं और चाहते हैं कि मैं विनष्ट न होऊँ। मेरे एक परम दयामय पिता हैं। यद्‌यपि मैं ने उनके अनुग्रह को तिरस्कृत किया, उनके वरदानों को कौड़ी के तीन कर बिखेर फेंका, फिर भी मैं जाग्रत होऊँगा, और अपने पिता के पास जाकर कहूँगा कि “पिता मैं ने स्वर्ग के विरोध में और तेरे देखते पाप किया है। अब इस लायक नहीं रहा कि तेरा पुत्र कहलाऊँ मुझे अपने एक मजदुर की नाई

लगा ले," फिर वह दृष्टांत आप को बता देता हे कि पथ-भ्रष्ट का स्वागत कैसे होगा-- "वह अभी दूर ही था कि उसनके पिता ने उसे देख कर तरस खाया और दौड़ कर उसे गले लगाया और बहुत चूमा।"

यह दृष्टांत बड़ी कोमल और मार्मिक वेदना से भरा है, किंतु तौभी यह ईश्वर जैसा परमपिता की अनंत ममता और वात्सल्य भावना के निस्सीम रस को व्यक्त करने में असमर्थ है। अपने भविष्यवक्ता द्वारा ईश्वर ने यह घोषणा की हे, "मैं तुझ से सदा प्रेम रखता आया हूँ इस कारण मैं ने तुझे करुणा कर के खींच लिया है।" यिर्मयाह ३१:३। और जब पापी के हृदय में ईश्वर

के पास लौट चलने की जितनी भी विकलतायें आती हैं, उन में प्रत्येक ईश्वर की प्रेरणावश होती हैं; वे ईश्वर के अनुभव-विनय, प्रेमाकर्षण ही रहती हैं जो उसे अपने परमपिता के पास लौट चलने को कहती हैं॥

बाइबल की आशा से भरी ज्योति के रहते हुए भी क्या आप संशय के अंधकार में रहेंगे? क्या आप कभी ऐसा विश्वास करेंगे कि जब वह विचारा पापी अपने पापों से मुक्त होने और ईश्वर के पास लौट चलने के लिए व्याकुल रहेगा, तो ईश्वर उसे अपने पैसों में स्थान देने के बदले फटकार देगा? ऐसे विचारों को दूर बाहर कीजिए। ईश्वर जैसे परम करुणामय परम पिता की ऐसी मिथ्या

धारणा बना कर आप अपनी आत्मा को सब से बुरी चोट पहुंचाते हैं। यह बात ठीक है कि वे पाप से घृणा करते हैं किंतु पापी को तो वे प्यार करते हैं। और उन्हों ने यीशु के रूप में अपने आप को इसी प्यार से समर्पित कर दिया ताकि जो कोई भी चाहे, मुक्त हो पाप और महिमामय स्वर्ग के राज्य में अनंत आनन्द का उपभोग करे। अपने प्रेम व्यक्त करने के लिए जैसे भाषा और जैसे शब्दों का व्यवहार उन्होंने कहा है,“क्या कोई स्त्री अपने दुधपिउवे बच्चे को ऐसा बिसरा सकती कि अपने उस जने हुए लडके पर दया न करे हा वह तो भूल तो सकती है पर मैं तुझे भूल नहीं सकता हूँ।” यशवाह ४६:१५॥

संशय में पड़े लोग! कम्पते हुए लोग! अपने सन्देह छोड़ो, जरा ऊपर देखो यीशु हमारी भलाई और मुक्ति के लिए जीवित है। ईश्वर को शत शत बार धन्य धन्य कहो क्योंकि उन्होंने अपने प्रिय-पुत्र दिये, और प्रार्थना यह करो कि उनका प्राणोत्स्यर्ग तुम्हारे लिए व्यर्थ का न हो। उन का आत्मा तुम्हें आज ही बुला रहा है। तुम अपने हृदय की सारी आकाँक्षा लेकर उनके पास चले आओ ओर तब तुम उनकी आशीषों का दावा कर सकते हो॥

ईश्वर के वचनों को मनन करते समय यह मत भूलिये कि उन्हों ने प्रेमसिक्त शब्दों में करूणद्र हृदय से ही सारी प्रतिज्ञा की है। असीम प्रेममय,

दयासागर और करूणाकर प्रभु का हृदय पापी की ओर अनन्त ममता से आकृष्ट होता है। “हम को उस में उस के लोहू के द्‍वारा छुटकारा अर्थात अपराधों की क्षमा उस के उस अनुग्रह के धन के अनुसार मिला है।” इफिसीस १:७। यह सच है। केवल दृढ़ विश्वास कीजिये कि ईश्वर ही आप का एक मात्र सहायक है। वह अपनी नैतिक प्रतिमूर्ति मनुष्य में पुन: स्थापित करना चाहता है। जैसे जैसे अपने पापों की स्वीकृति और उनके लिए प्रायश्चित करते हुए आप ईश्वर के पास पहूँचते जाइयेगा, वैसे ही वैसे ही वह भी अपनी करुणा और क्षमा के साथ आप के निकट पहुँचता जायेगा॥

7 शिष्यपन की कसौटी

“यदि कोई मसीह में हो तो नई सृष्टि है, पुराणी बातें बीत गई हैं देखो वे नई हो गई है”॥

मन परिवर्तन की परिस्थितियों की श्रृंखला का विशद वर्णन संभव नहीं; क्योंकि कोई भी आदमी यह नहीं कह सकता कि परिवर्तन हुआ ही नहीं। खिष्ट ने निकुदेमुप से कहा, “हवा जिधर चाहती है और तू उसका शब्द सुनता है पर नहीं जानता वह कहाँ से आती और किधर जाती है। जो कोई आत्मा से जन्मा है वह ऐसा ही है।” योहन ३:८। अदृश्य वायु की तरह, जिसे देखना संभव नहीं, किंतु जिसके प्रभाव की प्रितिती हो

जाती है, ईश्वर का आत्मा मनुष्य के में चेतना डाल रहा है। यह प्राणमयी शक्ति जो अदृश्य हे, मनुष्य को पुन: जाग्रत कर अनुप्राणित करती, तथा नूतन जीवन के स्पंदन भर देती है। यही अदृश्य शक्ति मानव में ईश्वर को प्रतिमूर्ति की स्थापना करती है। इस पवित्र आत्मा के कार्य अनुभवगम्य नहीं, अप्रत्यक्ष हैं, किंतु इसके प्रभाव प्रत्यक्ष हैं। यदि इससे हृदय में नूतन चेतना आई तो सारा जीवन उसकी साक्षी में अभिनव उल्लास प्रगट करेगा। हम स्वयं अपने बल पर हृदय में परिवर्तन नहीं ला सकते, हम स्वयं अपनी सामर्थ्य से ईश्वर में तदात्म्व नहीं हो सकते, हम अपनी भक्ति अथवा अपने पुण्य पर भरोसा नहीं कर सकते, फिर भी हमारे

जीवन में यह साफ प्रगट होगा कि ईश्वर का अनुग्रह रहने से चरित्र में, अभ्यासों में उद्योग और उद्देश में परिवर्तन साफ झलकेगा। पहले ये कैसे और क्या थे, और अब कैसे और क्या हैं, इसकी तुलना करने से आप का परिवर्तन स्पष्ट हो जायेगा। चरित्र का पता आकस्मिक भलाई अथवा बुरी के कार्यों से नहीं मिलेगा किंतु स्वाभाविक वचनों और कार्यों की प्रकृति और लक्ष्य से मिलेगा॥

यह भी हो सकता है कि चाल चलने के बह्याव्यवाहर में सफाई और पवित्रता आ जाय किंतु यीशु की अनुप्राणित करने को शक्ति न आये। अपने प्रभाव को बढ़ाने की इच्छा और दूसरों की आँखों में बढ़ा सम्मानित होने की अभिलाषा भी

जीवन को स्वच्छ और पवित्र बना सकती है। आत्म-गौरव भी कुवासनाओं में पड़ने से हमें रोक सकता है। स्वार्थी भी दानपुण्य आदि कर सकता है। तब, यह कैसे निर्णय हो सकता है कि हम लोग किस धग में हैं, ईश्वर के अथवा शैतान के?

तब प्रश्न ये उठेंगे--हृदय पर किसका अधिकार हे? हमारे विचार किस पर एक केन्द्रित हैं? किसके विषय में हम संभाषण करना पसन्द करते हैं? किसकी ओर हमारे समस्त अनुराग तथा सारी स्फूर्ति लगी हुई हे? यदि हम यीशु के वर्ग में हैं, यीशु के हैं, तो हमारे समस्त विचार उनके आधीन हैं, और हमारी सारी मधुर कल्पनाएं उन्हीं की हैं। हम जो कुछ भी

हैं, और हमारी जो कुछ भी है सभी कुछ उनपर अर्पित है। हम तब उनका रूप हृदय में स्थापित करने को, उनकी चेतना में स्वांस लेने को, उनके आदेश मानने को और उन्हें सदा प्रसन्न करने को प्रस्तुत रहते हैं॥

जो कोई भी यीशु में आत्म-विसर्जन कर नये जीवन की प्राप्ति करेगा, वह पवित्र आत्मा का नया फल लायेगा, वे “प्रेम, आनंद, मेल, धीरज, कृपा, भलाई, विश्वास, नम्रता और संयम हे।” गलतियों ५:२२, २३। अब ये लोग पहले की भोग-लिप्सा, आसक्ति और खालच के अनुसरणपने चरित्र कुत्सित नहीं बनायेंगे किंतु ईश्वर के पुत्र पर दृढ़ विश्वास कर ये उनका अनुसरण करेंगे,

उनके विमल चरित्र की प्रतिच्छाया अपने चरित्र पर लाएगे और उनके अनुसार ही पवित्र और पुनीत हो उठेंगे। जिन वस्तुओं से वे पहले घृणा करते थे उनको वे अब प्यार करते हैं और जिनसे पहले वे प्रेम रखते थे उनको अब घृणा करते थे उनको वे अब प्यार करते हैं और जिनसे पहले वे प्रेम रखते थे उनको अब घृणा करते हैं। घमंडी और आत्म-प्रशंषी विनीत और नम्र हो जाते हैं। वकवादी और जिद्दी गंभीर तथा उदार बन जाते हैं। शराबी संयमी हो जाता है, लम्पट पवित्र बन जाता है। संसार के मिथ्या और पाखंडपूर्ण व्यवहार तथा रीतियाँ उठ जाती हैं। इसी से कहा गया है कि सच्चे ईसाई ब्राम्हाडंम्बर से भरे नहीं देखते किंतु वे हृदय में छिपे हुए मनुष्यत्व को

परखते हैं--"तुम्हारा सिंगार ऊपरी न हो जैसा बाल गूंथने और सोने के गहने या भांति भांति के कपड़े पहिनना। पर हृदय के गुप्त मनुष्यत्व उस नम्र और शांत आत्मा के अविनाशी शोभा सहित।" १ पतरस ३:३, ४॥

यदि पश्चाताप ने सुधार नहीं लाया तो वह वास्तविक पश्चाताप का आदर्श हो नहीं सकता। यदि उसने अंधक की वस्तु वापस कर दी, चोरी की हुई चीज लौटा दी, अपने पाप स्वीकार कर लिये, और ईश्वर तथा अपने बन्धुओं पर सच्चा प्रेम दिखाया, तो पापी भी मृत्यु जीवन की ओर प्रगति करेगा।

जब हम भूल-भ्राँतियों से भरे हुए हृदय के लिए, अपने पाप के गठ्ठर को संभाले खीष्ट के पास उपस्थित होते हैं और उनके अनुग्रह तथा क्षमाशीलता के भागी बन जाते हैं, तो हृदय में प्रेम का सोता फूट पड़ता है। सारे गठ्ठर का बोझ हल्का हो जाता है, क्योंकि खीष्ट का अनुग्रह आदेशों को भी मधुर बना देता है। फिर तो गंभीर कर्त्तव्य। आनन्द से ओत-प्रोत मालूम पड़ता है, बलिदान उल्लासमय हो जाता है। वाही मार्ग जो पहले घटाटोप अंधकार से अच्छादित था, पुनीत प्रभाकर की उज्ज्वल प्रभा से आलोकित हो उठता है॥

खीष्ट के चरित्र की मधुरता उनके शिष्यों में स्पष्ट दीख पड़ेगी। खीष्ट को तो

ईश्वर की आज्ञापालन करने में आनंद मिलता था। ईश्वर पर प्रगाढ़ प्रेम, उनके गौरव के लिए अदम्य उत्साह हमारे मुक्तिदाता के जीवन को स्पन्दित करते रहे। प्रेम ने यीशु के सारे कार्यों को सुशोभित एवं उन्नत करा दिया। प्रेम ईश्वर से है। यह उस हृदय में उध्दूत नहीं हो सकता जिसने अपने आपको ईश्वर पर अर्पित नहीं किया। यह उसी हृदय में रहेगा जहाँ यीशु अधिष्टित हैं। “हम इस लिए प्रेम करते हैं कि पहले उनसे हम से प्रेम किया।” १ योहन ४:१८। स्वर्गीय अनुग्रह से जो हृदय आभासित एवं नवीन हुआ है। उसके कार्यो का सिध्दान्त केवल प्रेम ही रहेगा। यह चरित्र को विमल, स्वाभविक प्रवृत्तियों को अनुशासित, उद्वेगों और काम को

संयमित, शत्रुता को परिवर्तित तथा अनुरागों को उन्नत बना देता है। इस ईश्वरीय प्रेम को आत्मा में स्थापित कर लेने से जीवन मधुर हो उठता है तथा समस्त वातावरण आलोकमय स्पंदन से भर जाता है॥

ईश्वर के सभी पुत्रों को साधारणतः और उनके अनुग्रह पर विश्वास करनेवाले नये धार्मिक लोगों को विशेषतः दो बड़े भूलो से सतर्क रहना चहिए। पहली भूल तो वही है जिसका वर्णन ऊपर हो चूका है, अर्थात अपने कामों, अपनी शक्ति के भरोसा पर ईश्वर में तादात्म्य की चेष्टा। जो कोई ईश्वर के विधान के अनुरूप चलता हुआ अपनी सामर्थ्य से परिवर्तित होना चाह रहा है, वह असंभव की चेष्टा

कर रहा है। मनुष्य जो कुछ अपने बल पर और ख्रीष्ट की सहायता के वगैर करेगा, वह स्वार्थ और पाप से भरा रहेगा। केवल ख्रीष्ट का अनुग्रह ही विश्वास के द्वारा हमें पवित्र बना सकता है॥

इस भूल के विपरीत दूसरी भूल है और वह भी कम खतरनाक नहीं। इस मे यह भ्रान्ति होती है की ख्रीष्ट पर विश्वास करने से ईश्वर के नियमो का पालन से छुटकारा मिल जाता है। अर्थात अब विश्वास के द्वाराही ख्रीष्ट के अनुग्रह के प्राप्ति होगी, तो अपनी मुक्ति के लिए हमें कुछ करना ही नहीं।

लेकिन यहाँ इस बात पर गोर करना आवश्यक है की आज्ञा-पालन का अर्थ आदेशों का बाह्य अर्थ में पालन नहीं होता, परंतु पूर्ण सेवा होता है। ईश्वर की व्यवस्था ईश्वर के स्वाभाव की अभिव्यक्ति है, वह प्रेमके सिद्धांत का दूसरा रूप है। और इसी सिद्धांत पर उसके लौकिक एवं पारलौकिक साम्राज्य की नींद पड़ी है। यदि हमारे ह्रदय ईश्वर के अनुरूप होकर जीवन ज्योति और जाग्रति से भर जांए, इसी हमारी आत्मा में ईश्वरीय प्रेम सदृढ़ हो जाय तो क्या ईश्वरीय व्यवस्था का पालन हम जीवन में न करेंगे? जब प्रेम के सिद्धांत ने ह्रदय में जड़ जमा दिया, जब मनुष्य का पुनर्जागरण ईश्वर के प्रतिमूर्ति के रूप में हुआ, तो ईश्वर की नई वाचा तो पूरी हो

गई, “में अपनी व्यवस्थाओ को इनके मन में डालूँगा और उनके हृदयों पर लिखूँगा।” इब्री १०:१६। फिर जब आज्ञाएँ हृदय में प्रकित हो गई तो क्या वे जीवन को अपने अनुरूप नहीं बनायेंगी? शिष्यपन की सच्ची परख आज्ञा-पालन में है क्यों की आज्ञा-पालन प्रेम की सेवा और उसके प्रति भक्ति और श्रद्धा ही है। पवित्रशास्त्र में इस प्रकार लिखा है - “परमेश्वर का प्रेम यह है की हम इसकी आज्ञाएँ मानें।” “जो कोई कहता है की मैं इसे जान गया हूँ और उसकी आज्ञाओं को नहीं मानता वह छुठा है।” १ योहन ५:३, २:४। विश्वास आज्ञा-पालन में बाधा नहीं डालता, ईश्वर के नियमों से छुटकारा नहीं दिलाता। आज्ञा-पालन से छुटकारा दिलाना तो दूर, विश्वास ही वह

शक्ति है जो हमें यीशु के अनुग्रह प्राप्त करने की सामर्थ्य देती है और जिसके फलस्वरूप हम आज्ञा-पालन में दत्त चित्त होतें हैं॥

लेकिन आज्ञा-पालन के कारण हम अपनी मुक्ति नहीं प्राप्त करते। मुक्ति तो ईश्वर का स्वतंत्र वरदान है और वह विश्वास से ही प्राप्त होती है। किंतु विश्वास का फल आज्ञा-पालन है। “तुम जानते हो की वह इसलिये प्रगट हुआ कि पापों को हर ले जाए और उसमे पाप नहीं। जो कोई उसमे बना रहता है वह पाप नहीं करता। जो कोई पाप करता है उसने न उसे देखा है और न उसको जाना है।” १ योहन ३:५, ६। बस वाही सच्ची कसोटी है। यदि हम यीशु में वास करते

है, यदि ईश्वरीय प्रेम हमारे ह्रदय में अधिष्टित हैं तो हमारे मनोभाव, विचार, कार्य सभी ईश्वर कि इच्छाशक्ति कि अभिव्यक्ति रूप, पवित्र व्यवस्था के अनुरूप होंगे। “हे बालको, किसीके भरमाने में न आना जो धर्म के कम करता हैं वाही उसकी नाई धर्मी है।” १ योहन ३:७। सिनैं में दिए दस आज्ञा में जैसा प्रगट हुआ है उसी ईश्वरीय प्रेमके माप-दंड के द्वारा धार्मिकता कि वही परिभाषा हुई है॥

वह तथाकथित विश्वास जिसके बारे यह कहा गया है कि वह ईश्वर के आज्ञा-पालन से मनुष्य को छुटकारा दिला देता है, वह विश्वास नहीं है। वह तो कल्पना है। “विश्वास के द्वारा

अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है।” “विश्वास भी यदि कर्मसहित न हो तो” इफिसियों २:८; याकूब २:१७। यीशुने पृथ्वी में प्रदार्पण करने के पहले अपने बारे यह कहा था, “है मेरे परमेश्वर में तेरी इच्छा पूरी करने से प्रसन्न हूँ और तेरी व्यवस्था मेरे अंत:करण में बनी है।” भजनसंहिता ४०:८। और जैसे ही वे स्वर्गरोहन कर चुके उन्होंने कहा, “मैंने अपने पिता की आज्ञाओं को माना है और उसके प्रेम में बना रहता हूँ।” योहन १५:१०। पवित्रशास्त्र कहता है, “यदि हम उसकी आज्ञाओं को मानेंगे तो इससे जानेंगे की हम उसे जान गए है। जो कोई यह कहता है की मैं उसमें बना रहता हूँ उसे चाहिए की आप भी वैसाही चले जैसे वह चलता था।” १ योहन २:३, ६।

“क्योंकि मसीह भी तुम्हारे लिए दु:ख उठा कर तुम्हे एक नमूना छोड़ गया है की तुम उसकी लोकपर चलो।” १ पितर २:२१॥

अनंत जीवन की प्राप्ति के लिए जो शर्त पहले थी वह अब भी है - जैसी शर्त हमारे प्रथम माता-पिता के समक्ष उनके पतनके पूर्व पैरेडाइज में थी वैसीही वह अब भी है। और वह शर्त यही थी की ईश्वरीय व्यवस्था का पूर्व पालन, पूर्ण धार्मिकता का भाव। यदि इस शर्त से किसी भी कम शर्त पर अनंत जीवन की प्राप्ति हो जाये, तो सारे विश्व का अनंत खतरे में पद जाय। तब सममिये पाप का भाग प्रशस्त हो उठे और यातनाओं तथा दुश्चिंताओं का बाजार गर्म हो उठे॥

पतन के पहले आदम यदि चाहता तो ईश्वरीय व्यवस्था का पालन कर शुद्ध चरित्र का गठन कर लेता। किंतु वह असफल हुआ, उसने ईश्वर के नियम का उल्लंघन किया। फिर उसके पाप के कारण हमारी प्रकृति भी अधोगामी हुई। अब हम भी धर्मी नहीं बन सकते। क्योंकि हम लोगी पापी और अशुद्ध हैं, अत एव हम लोग ईश्वरीय व्यवस्था को पूरी तरह नहीं मान सकते। हम में वह पवित्रता जन्मजात नहीं जिसके बलपर ईश्वर की व्यवस्था का हम पालन कर सकते हैं। किंतु ख्रीष्टने हमारे उद्धार का एक मार्ग प्रशस्त किया है। वे उन कष्टों और मोहक तृष्णाओं के बीच जीवनस्थापन कर चुके वे जिन के बीच

हम रहते हैं। उन्होंने निष्कलंक जीवन व्यथित किया। उन्होंने हमारे लिए प्राणत्याग किया और अब वे हमारे पापों को लेने तथा अपनी धार्मिकता देने को प्रस्तुत हैं। यदि आप अपने को उनपर न्योंछावर कर दे और उन्हें मुक्तिदाता के रूप में स्वीकार कर लें तो चाहे कितना भी पापी आपका जीवन क्यों न रहा हो, उनके कारण आपकी गिनती धर्मियों में होगी। आप के स्वाभाव के जगह यीशु का स्वभाव रहेगा, और ईश्वर के समक्ष आप वैसे रूप में ग्रहण कर लिये जायेंगे जैसे आपने कभी कोई पापही नहीं किया हो॥

केवल इतना ही नहीं, यीशु ह्रदय तक को परिवर्तित कर देते हैं। वे आपके ह्रदय में

विश्वास के द्‌वारा निवास करते हैं। आपके लिये अब आवश्यक है की विश्वास की दृढ़ता एवं आत्म-समर्पण की नम्रता के बलपर आप ख्रीष्ट से इस संबंध को सुदृढ़ करते जाय। जब तक आप ऐसा करते रहेंगे, वे आपके अन्तर में तब तक ऐसी सामर्थ्य भरते जायेंगे की आपकी इच्छाशक्ति एवं कर्म उनके मनके मुताबिक हों। अत एव आप कह सकेंगे की “मैं शरीर में अब जो जोता हूँ जो परमेश्वर के पुत्र पर है जिसने मुक्त से प्रेम किया और मेरे लिये अपने आप को दे दिया।” गलतियों २:२०। अपने शिष्य को यीशुने ऐसा ही कहा था, “बोलनेवाले तुम नहीं हो पर तुम्हारे पिता का आत्मा तुम में बोलनेवाला है।” मती १०:२०। फिर अब यीशु आपके

अन्तस्थल को सन्दित करते रहेंगे तो आप उन्ही की शक्तियों को प्रत्यक्ष करेंगे - धार्मिकता के महान कार्य,
आज्ञा-पालन के विषदकार्य ही आप कर पायेंगे॥

अत एव हममें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसका हम गर्व न कर सकें।
आत्म-श्लाघा अथवा आत्म-गौरव के लिए हमारे पास कोई कारण नहीं। ख्रीष्ट की धार्मिकता जो हम में जगाई गई है, वही हमारी आशा की दृढ़ भित्ति है। और यह ख्रीष्ट के द्वारा होता है जो हम में करता है॥

जब हम विश्वास का उल्लेख कर रहे हैं, तो इस धार्मिक विश्वास अथवा भक्ति

और एक दुसरे प्रकार के छिछले विश्वास में जो फर्क है उसे समज लें। यह छिछला विश्वास भक्ति से अलग है। ईश्वर की अस्तित्व, ईश्वर की शक्ति और उसके वचन ऐसे सत्य हैं जिन्हें शैतान और उसके सारे शिष्य भी अपने ह्रदय से नहीं इन्कार कर सकते। बायबल में लिखा है की “दुष्टात्मा भी विश्वास रखते और थरथराते हैं।” किंतु यह विश्वास नहीं है। जहाँ ईश्वर पर विश्वास और साथ साथ अपना समर्पण भी हो, जहाँ ह्रदय उन पर न्योछावर कर दिया जाय, अनुराग उन पर ही केन्द्रित कर दिये जाँय, वही विश्वास है। यही धार्मिक विश्वास प्रेम द्वारा क्रियाशील होता है और आत्म-शुद्धि करता है। वह ह्रदय जो अपनी पूर्वावस्था में ईश्वरीय व्यवस्था

को ग्रहण नहीं करता था, उस के प्रतिकूल चलता था अब उसकी आज्ञाओं को मान कर प्रमुदित होता है और स्तोत्रकर्ता के शब्दों की प्रतिध्वनी करता है, “आद, मैं तेरी व्यवस्था में कैसी प्रीति रखता हूँ; दिनभर मेरा ध्यान उसी पर लगा रहता है।” भजन संहिता ११८:८७। तब व्यवस्था की धार्मिकता हम में पूर्ण होती है, क्यों की हम शरीर की अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं करते प्रत्युत आध्यात्मिक की॥

कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने ख्रीष्ट की क्षमाशील प्रीति का स्वाद चख लिया है और इसलिए ईश्वर के सच्चे पुत्र होने के इच्छुक वे हो उठे हैं, किंतु उन्हें कुछ ऐसा भान होता है की उनका चरित्र सिध्द नहीं

है, जीवन त्रुटिपूर्ण है। अब ऐसे लोगो को यह संभ्रम होगा की उनका हृदय पवित्र आत्मा द्वारा शुद्ध एवं पुन:नविन बना या नहीं? ऐसे लोगो को मेरी वही सलाह होगी की हताश होकर पीछे न मुड़े। हमें तो यीशु के पैरो के सामने छुककर अक्सर रोना ही पड़ेगा; हमारे दोष और भूल ही असंख्य हैं किंतु इसका अर्थ यह नहीं की हम आशा छोड़ दे, और उत्साह खोकर हताश हो जाँय। शत्रु हमें हरा सकता है की हम सदा के लीए परित्यक्त नहीं रहेंगे, एवं ईश्वर द्वारा अग्राह्य घोषित नहीं होंगे। ऐसा कदापि नहीं होगा; ख्रीष्ट ईश्वर के दहिने हाथ की ओर हैं और वे सदा सदा हमारे परित्राण के लीए ईश्वर से निवेदन करते हैं। प्रिय यहान्ना ने कहा है, “है मेरे बालको मैं ये

बातें तुम्हे इसलिए लिखता हूँ की तुम पाप न करो ओर यदि कोई पाप करे तो पिता के पास हमारा एक सहायक है अर्थात धार्मिक यीशु मसीह।” १ यहुन्ना २:१। फिर ख्रीष्ट के वे शब्द भी मत भूलिये, “पिता तो आप ही तुम से प्रीति रखता है।” यहुन्ना १६:२६। उनकी इच्छा है की आप उनके रूपमें लौट जाँय, ताकि वे अपनी पवित्रता आप में प्रतिबिंबित देख सकें। बस यदि आप अपने आपको उनपर छोड़ दें, तो वे आप सें श्रेष्ठ कार्य शुरू कर ख्रीष्ट के दिनों तक बराबर श्रेष्ठता भरते जायेंगे। और भी अधिक श्रद्धा से प्रार्थना कीजिये, और भी भक्ति से उनपर विश्वास कीजिये। जैसे जैसे हम अपनी खुद की तकाद पर विश्वास करते जाँय, वैसे वैसे ही अपने

मुक्तिदाता यीशु की शक्ति पर भरोसा करते चलें और अपनी मुखक्षी की वास्तविक प्रभा के स्त्रोत यीशु की सराहना करते चलें।

आप यीशु के समक्ष जितना निकट होते चलेंगे, उतने ही सदोष अपनी आँखों में ही स्वयं बचेंगे। इसका कारण यह है की निकटता के कारण आप की दृष्टी साफ़ होती जायेगी और आप के दोष उनकी पूर्णता के तुलना में स्पष्ट और विस्तृत रूप में प्रतीत होंगे। इसी से यह प्रमाण मिल जायेगा की शैतान के जाल में अब अपनी शक्ति खो रहे है और ईश्वर का आत्मा आपको जाग्रत कर रही है॥

जिस ह्रदय में अपने पाप की प्रतीति नहीं उस ह्रदय में यीशु के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का निवास असंभव है। ख्रीष्ट के अनुग्रह द्‍वारा परिवर्तित आत्मा में उस के ईश्वरीय चरित्र पर श्रद्‍धा भर जायेगी। किंतु यदि हम अपने नैतिक पतन का अवलोकन न कर सकें तो यह बात निर्विवाद रहेगी की हमें ख्रीष्ट के धवल प्रकाशमय सौंदर्य और सुषमा की प्रतीति नहीं हुई॥

जितना भी हम अपने चरित्र और जीवन में सराहना के योग्य गुण कम देखेंगे, उतना ही अपने मुक्तिदाता के चरित्र सें सराहना के योग्य गुण अधिक देख सकेंगे। अपने पापों को देख हम उनकी और तपकते है जो हमें क्षमा कर सकते

हैं। फिर अपनी कमजोरी जानकर जब आत्मा ख्रीष्ट की ओर प्राणपण से दोड़ पड़ती हैं तो यीशु अपनी सारी शक्ति उस के समक्ष खोल देंगे। अपनी आवश्यकता की भावना जितनी जबर्दस्त तरीके से हमें उनकी ओर और ईश्वर की ओर प्रेरित करेगी, उतने ही भव्यरूप हम उन के चरित्र को देख पायेंगे और उतने ही पूर्ण रूप में हम उनके रूप को प्रतिबिंबित कर सकेंगे॥

यीशु मेरे अंतरस्थल में कर दो अंकित यह बात अभी,
तुम्ही एक जीवन दाता, मुक्तिदाता, करुणामय भी,
छूटे मेरा तन-मन-धन भी, टूटे जग के संबंध सभी,

पर मेरा तेरा जो नाता, वह नहीं, नहीं,
टूटे कभी॥

8 ख्रीष्ट में बढ़ते जाना

जिस परिवतन के द्वारा हृदय इतना विशुद्ध और निर्मल हो जाता है की हम ईश्वर के पुत्र बन जाते हैं, उसी परिवर्तन को बायबल में जन्म कहा गया है। फिर इस अवस्था की उपमा किसान द्वारा बोये गये बीज के अंकुरित होने से दी गई है। उसी प्रकार जो लोग तुरंत ख्रीष्ट की शरण में नये नये आते हैं, वे “नये जन्मे बच्चों की नाई” हैं और उन्हें यीशु में निवास कर पुरे मनुष्य की कद का “बढ़ते जाना” पड़ता है। १ पितर २:२; एफिसो ४:१५। -- अथवा खेत में बोये गये अच्छे बीज की तरह उन्हें संकुरित, पल्लवित, कुसुमित और फिर फलित होना पड़ेगा। यशायाह ने कहा है, “ये धर्म के भक्ति

वृक्ष और यहोवा के लगाये हुए कहलायें की वह शोभायमान ठहरे।" यशायाह ६१:३। इस प्रकार हम देखते हैं की हमारे वास्तविक और प्रकृत जीवन से उदाहरण एकत्र किये जाते हैं ताकि हम आत्मिक जीवन के कौतुक और रहस्यपूर्ण सत्य को पूरी तरह समझ सकें॥

मनुष्य की सारी बुद्धी और कौशल संसार की छोटी से छोटी चीज में जीवन दल नहीं सकता। ईश्वर ने जीवन-शक्ति पौधों और मनुष्यों में दी है, उसी के बल पर वे जीवित रह सकते हैं। उसी प्रकार आत्मिक जीवन भी मनुष्य के ह्रदय में ईश्वर द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। जब तक मनुष्य "नये सिरे से न जन्मे" तब

तब वह उस जीवन को प्राप्त नहीं कर सकता जिसे ख्रीष्ट देने आये थे॥

जो बात जीवन प्राप्ति के विषय सच है, वाही वृद्धी के बारे में सत्य है। ईश्वर ही कलियों को विकसित करता है, ईश्वर ही फूलों को फलों से भरता है। उसी की शक्ति के कारन बीज विकसित होता है, "पहले अंकुर तब बाल और बालों में तैयार-दाना।" मार्क ४:२८। होशे नयी इस्त्राइल के विषय कहते हैं की "वह सोसन की नाई फुले फलेगा।" वे "अन्न की नाई बढ़ेंगे और दाख लता की नाई फुले फलेंगे।" होशे १४:५, ७। यीशु हमें आदेश देते हैं की "सोसनों पर ध्यान करो की वे कैसे बढ़ते हैं।" लूक १२:२७। पौधे, फूल और वृक्ष अपनी शक्ति, सामर्थ्य

और चेष्टा के बल पर बढ़ते नहीं, किंतु ईश्वर की जीवन-शक्ति पा कर ही बुद्धि पाते हैं। बच्चा चाहे स्वयं कितना भी उद्योग चेष्टा, और फिक क्यों न करे, अपनी लम्बाई चौड़ाई में बाल भर भी वृद्धी नहीं ला सकता। आप भी अपनी चिंताओं और चेष्टाओं के द्वारा अपने में आत्मिक वृद्धि नहीं ला सकते। पौधे और बच्चे अपनी परिस्थिति से आवश्यक पदार्थो - वायु, सूर्यकिरण और भोजन -को खिंच कर अपने जीवन में मिलाते हैं तभी बढ़ते हैं। ये वस्तुएँ उनके जीवन और वृद्धी-विकास के लिए ईश्वर के उपहार हैं। प्रकृति के पशु और पौधों के लिए जो काम ये वस्तुएँ करती हैं, वही काम ख्रीष्ट भी अपने विश्वासियों के प्रति करते हैं। वे उनके लिये “सदा का

उजियाला” है, तथा “सूर्य और ढाल” है। यशायाह ६०:१२, भजन संहिता ८४:११। वे “इस्त्राइल के लिये ओस के समान” होंगे। वे “घास की खूंटी पर बरसाने हारे मेंह” के समान आ पढेंगे। होशे १४:५; भजन संहिता ७२:६। वे जीवित जल हैं, “परमेश्वर की रोटी हैं हो स्वर्ग से उतर कर जगत को जीवन देती है।” यहुन्ना ६:३३॥

अपने प्रिय पुत्र के अनुपम उपहार के द्वारा ईश्वर ने समस्त जगत में अनुग्रह और सुषमा का वितान तान दिया है। ईश्वर का यह अनुग्रह और सुषमा उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार पृथिवी-मंडल में व्याप्त वायु। जो कोई भी इस अनुग्रह और सुषमा का उपयोग करेगा वह जीवन

प्राप्त करेगा तथा यीशु में निवास कर पुरे पुरुष और स्त्री की तरह विकल पायेगा॥

जिस तरह फूल सूर्य की और घूम घूम कर उसकी-जीवन-दायिनी किरणों को ग्रहण करता है और अपने सौंदर्य और सुडौलता में पूर्णता लाता है, उसी प्रकार हमें भी शुद्ध और पवित्र सूर्य यीशु की तरफ घूम घूम कर स्वर्गीय किरणों का ग्रहण और यीशु के अनुरूप अपने चरित्र को विकसित करना चाहिये॥

इसी बात की शिक्षा येशु ने यह कह कर दी है, “तुम मुझ में बने रहो और मैं तुम में। जैसे डाली दाखलता में यदि बनी न रहे तो अपने आप से नहीं फल सकती

वैसे ही तुम भी यदि मुझ में बने न रहो तो नहीं फल सकते। मुझ से अलग हो कर तुम कुछ नहीं कर सकते।” यहुन्ना १५:४:५। पवित्र जीवन यापन के लीए आप ख्रीष्ट पर उसी प्रकार निर्भर करते हैं, जिस पराक्र वृद्धी और फल के लीए डालियाँ अपने पौधों पर। उसके बिना आप में जीवन नहीं। आप में इतनी सामर्थ्य कहाँ की आप परीक्षाओं का सामना कर सकें और पवित्रता तथा अनुग्रह में बढ़ सकें। उन में निवास कर आप फल-फूल सकते हैं। उन से जीवन प्राप्त कर आप न तो सूखेंगे और न बिना फल के रहेंगे। आप की अवस्था वैसी रहेगी जो यथाह जल से भरी नदियों के तीर पर रोपे हुए वृक्षों की रहती है॥

अनेक लोगों की यह धारणा है की कर्त्तव्य का कुछ अंश स्वयं करना आवश्यक है। उन्हों ने पापों को क्षमा प्राप्ति के लीए ख्रीष्ट पर भरोसा किया है, किंतु अब अपनी ही चेष्टाओं द्वारा वे पवित्र जीवन वापन करने के इच्छुक हैं। किंतु ऐसी सभी चेष्टाएँ विफल होंगी। यीशु ने कहा है, “मेरे बिना तुम कुछ भी नहीं कर सकते।” हमारी अनुग्रह-प्राप्ति की शक्ति में वृद्धी, हमारे उपयोगिता, सभी कुछ तो ख्रीष्ट में मिले रहने पर निर्भर करता है। उनके साथ प्रतिदिन, प्रतिक्षण संबंध करने पर ही, उन में वास करने पर ही, हम अनुग्रह में बढ़ सकते हैं। वे केवल हमारे विश्वास के कर्ता ही नहीं परन्तु सिद्ध करनेवाले भी हैं। ख्रीष्ट ही आदि, अंत और सदा लों है। वे सदा, सर्वदा,

सर्वत्र है, जीवन में व्याप्त हैं। हमारे जीवन के वे न केवल प्रारंभ में और अन्त में रहेंगे, किंतु पग पग में भी। दाउद ने कहा है, “मैं यहोवा को निरन्तर अपने सम्मुख जानता आया हूँ वह मेरे दहिने रहर हैं इस लीए मैं नहीं टलने का।” भजन संहिता १६:८॥

अब आप पूछ सकते हैं की यीशु में निवास मैं किस प्रकार करूँगा? इसका उत्तर यही है की जिस प्रकार आप वे प्रारंभ में यीशु को अपनाया उसी प्रकार उन में निवास भी कीजिए। “जैसे तुम ने मसीह यीशु को प्रभु करके मान लिया है वैसे ही उसी में चलो।” “धर्मी जन विश्वास से जीता रहेगा।” कुलुस्सी २:६; इब्री १०:३८। आप ने अपने आप के ईश्वर

को सौंप दिया, आप पूर्णत: ईश्वर को अर्पित हुए; ताकि आप उनकी सेवा करें, उनकी आज्ञाओं का पालन करें। आप ने ख्रीष्ट को अपना त्राता मान लिया। आप अपने पापों का प्रायश्चित भी स्वयं नहीं कर सकते हैं और अपने ह्रदय को परिवर्तित भी स्वयं नहीं कर सकते हैं। किंतु जब आप ने अपने इश्वर पर न्योछावर कर दिया तो उसने ख्रीष्ट के नाम से आप के लीए यह सब किया। विश्वास के कारण आप यीशु के हो गए और विश्वास के बल पर ही आप को यीशु में वृद्धी पाना तथा विकसित होना है। यह आदान-प्रदान हुआ। आप को अपने सर्वस्व का आदान करना होगा, ह्रदय, इच्छा, सेवा सभी समर्पित कर देनी होगी, उनकी सर आज्ञाओं के पालन

करने में अपने को लुटा देना होगा। उन्हें आप को ग्रहण करना होगा - ख्रीष्ट में सब आशीषों की भरपूरी है, वे ही आप की ह्रदय में विराजेंगे, आप को शक्ति देंगे, पवित्रता देंगे, अनंत सहायता प्रदान करेंगे और ईश्वर की आज्ञाओं के पालन के लीए सामर्थ्य देंगे॥

प्रात:काल अपने को ईश्वर के लीए समर्पित कीजिए; यही समर्पण आप के लीए नित्य का सर्व प्रथम काम हो। आप की प्रार्थना ऐसी हो, “हे प्रभु, मुझे पूरी तरह तू ग्रहण कर ले और पूरी तरह अपना समझ। तेरे चरणों पर मैं अपनी सारी योजनाएँ अर्पित कर दे रहा हूँ। अपनी में आज मुझे लगा ले। मेरे अन्तर में निवास कर और मेरे सारे कार्य तुझ में

सम्पादित हो, ऐसी सामर्थ्य दे।" यह आप नित्य किजिये। प्रतिदिन प्रात:काल अपने को ईश्वारार्पित किजिये। अपनी सारी योजनाएँ उन पर समर्पित किजिए ताकि जैसा वे समझे, योजनाएँ सफल हो अथवा असफल॥

यीशु में समर्पित जीवन विश्राम का जीवन है। इस जीवन में भावों का उद्‌वेग नहीं किंतु अनंत शांति पूर्ण विश्राम है। आप की आशा आप में नहीं किंतु ख्रीष्ट में है। आप की दुर्बलता उनकी शक्ति में मिल जाती है, आप का अज्ञान उनकी वृद्‌धी और कुशाग्रता से संबंधित होता है, आप की अशक्तता उनकी महान शक्ति में जुट जाती है। अत एव आप अपने ऊपर भरोसा न किजिये किंतु सर्वदा

यीशु का स्मरण-मनन कीजिए। मस्तिष्क को उनके प्रेम, सौंदर्य, और चरित्र की पूर्णयता मनन करने दीजिए। यदि कोई भी वास्तु आत्मा की साधना के लिए चिंतन का विषय है तो वह विषय यीशु का आत्म-त्याग, यीशु की आत्मावज्ञा, यीशु की पवित्रता और विशुद्धता, और यीशु का अद्वितीय प्रेम ही है। उन्हें प्यार कर, उनका अनुकरण कर, उन पर पूर्णत: निर्भर कर आप अपने को उनके अनुरूप बना ले सकते हैं।

यीशु ने कहा है, “मुझ में बने रहो।” इन शब्दों विश्राम, शांति और विश्वास के भाव निहित हैं। वे फिर आमंत्रित कहते हैं, “मेरे पास आओ मैं तुम्हे विश्राम

दूंगा।” मती ११:२८, २६। स्तोत्रकर्ता के शब्दों में भी वही भाव छिपा है, जब वह कहता है, “यहोवा के सामने चुपचाप रह और धीरज से उसका आसरा रख।” भजन ३७:७। और यशायाह यह निश्चयता देता है, “चुपचाप रहने, भरोसा रखने से तुम्हारी वीरता ठहरेगी” यशायाह ३०:१४। इस “चुपचाप” के मूल में अक्रियाशिलाता या आलस्य नहीं है। क्योंकि मुक्तिदाता के निमंत्रण में विश्राम की प्रतिज्ञा और परिश्रम करने की आज्ञा दोनों मिली हुई हैं। “मेरा जूपा अपने ऊपर उठा लो। और तुम अपने मन में विश्राम पाओगे।” मती ११:२६। जो ह्रदय यीशु में जितना अधिक विश्राम करता है वह उतने ही आग्रह और उत्साह से उनके लिए परिश्रम करता है॥

जब मस्तिष्क स्वार्थ के विषय पर केन्द्रित रहता है तो वह यीशु के विमुख रहता है की मन मुक्तिदाता से विमुख रहे और आत्मा तथा परमात्मा का समागमन न हो सके। शैतान सदा चाहेगा की आप का मन संसारी भोगविलासों में, जीवन के उधेड़बुन में, चिंताओं और पहेलियों में, दुसरे के अवगुणों में अथवा अपनी दुर्बलताओं और अवगुणों में उलझा रहे। शैतान के चपेट में न आइये। अक्सर सच्चे आत्मविवेकी एवं ईश्वारानुरागी लोगों को भी शैतान चक्र में डाल कर स्वार्थ में प्रवृत्त करा देता है और उन्हें यीशु से पृथक कर अपने विजय की आशा करता है। हमें स्वार्थ को चिंतन का केंद्र न

बनाना चाहिए और अपने उद्धार के विषय में संशय न करना चाहिये। इन सबों से आत्मा शक्ति के मूल-स्त्रोत से हट कर दूसरी ओर जा लगती है। अपनी आत्मा को पूरी तरह ईश्वर के हाथों सौंप दीजिये और उन पर भरोसा कीजिए। सदा यीशु के बारे संभाषण कीजिए और उनका ही ध्यान लगाइये। अपने स्वार्थ को उन्ही में तिरोहित कर दीजिये। सारे संशय, संदेह और भ्रम को दूर कर दीजिए; अपने भय को बहिष्कृत कीजिए। पावल के साथ साथ ये बातें बोलिये, "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढाया गया हूँ और मैं जीता न रहा पर मसीह मुझ में जीता है और मैं शरीर में अब जो जीता हूँ तो उस विश्वास में जीता हूँ जो परमेश्वर के पुत्र पर है जिस

ने मुझ से प्रेम किया और मेरे लिये अपने आप को दे दिया।” गलतियों २:२०। ईश्वर में विश्राम कीजिए। वे इतने समर्थ हैं की आप के द्वारा अर्पित सारी वस्तुओं को सुरक्षित रख सकेंगे। यदि आप अपने हाथों सौंप देते हैं तो वे आप को विजयी से भी अधिक गौरवान्वित रूप में जीवन के पर लगा देंगे॥

जब यीशु ने मनुष्यत्व धारण किया तो उन्हों ने मनुष्यत्व को अपने से प्रेम की ऐसी जटिल बन्धनों द्वारा बाँध लिया की वह किसी के तोड़े न टूटेगी। हाँ, यदि मनुष्य उसे तोड़ देना पसंद करे तो वही तोड़ सकेगा। और शैतान सदा ऐसी मोहक और आत्मिक वस्तुएँ हम लोगों को दिखलायेगा की हम इस बंधन को

तोड़ देने में प्रवृत्त हो जाँय। इस के तोड़ देने पर हम यीशु से अलग हट जायेंगे। यहीं पर हमें सतर्क रहना चाहिये की हम किसी भी हालत में दुसरे स्वामी के अधिपत्य में न भूल पड़ें। हमें सदा ख्रीष्ट का ध्यान लगाना चाहिये। वही हमारी रक्षा कर सकेंगे। जब तक उनकी ओर ध्यान-रत रहेंगे, हम सुरक्षित रहेंगे। किस की सामर्थ जो उनके हाथों से हमें छीन कर ले जाय? उनके सतत ध्यान और साधना से "उस प्रभु के द्‍वारा जो आत्मा है तेज पर तेज प्राप्त करते हुए उसी रूप में बदलते जाते हैं।" २ कुरिन्थ ३:१८॥

प्राचीन समय के शिष्यों ने अपने मुक्तिदाता के अनुरूप अपने को इसी

विधि से बनाया था। जब इन लोगों ने यीशु की वाणी सुनी तो इन्होंने यीशु की आवश्यकता अनुभव किया। इन्हों ने उन्हें खोजा, उन्हें पाया और फिर उन्हीं का अनुसरण किया। ये लोग यीशु के साथ घर में, खाना खाते वक्त, बात करते वक्त, मैदान में, सब समय सब जगह रहते थे। ये शिष्यों की तरह और अपने गुरु से पवित्र शिक्षाएँ और उपदेश श्रवण करते थे। ये उन्हें अपना स्वामी समझते और दासों की तरह उन की आज्ञाएँ पालन करते थे। ये शिष्य "हमारे समान दु:ख सुख भोगी मनुष्य" थे। याकूब ५:१७। हम लोगों की तरह उन्हें भी पाप से दुघर्ष संग्राम करना पड़ा था। पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें

भी हमारी ही तरह ईश्वर के अनुग्रह की आवश्यकता थी॥

यीशु का सब से प्रिय शिष्य और यीशु की समता करने वालों में सब से अग्रगण्य योहन ने भी स्वाभाविक रीती से मधुर प्रकृति नहीं पाई थी। वह न केवल आत्म-प्रशंसी और सम्मान-प्रेमी था किंतु अग्र और क्रोधी भी था। परंतु जब उस ईश्वरीय विभूति यीशु की मधुर प्रकृति उसकी आँखों के सामने आई तो उसने अपनी सारी दुर्बलताएँ देख लीं। तब कहीं वह विनम्र हुआ। बल और धैर्य, शक्ति और उदारता, शौम्य और सरलता के प्रकाश जो उस ने ईश्वर पुत्र में देखे, तो उस की आत्मा विस्मय और पुलक से भर गई। वह प्रेम-विभोर हो उठा। प्रत्येक

दिन वह ख्रीष्ट को ओर अधिक तीव्रता से आकृष्ट होता गया। और फिर थोड़े ही दिनों के बाद उसने अपने स्वयं को स्वामी के प्रेम में डूबा दिया। यीशु की कृपा के कारण उस के स्वामी की उग्रता और दोष दब गए। ख्रीष्ट की धवल प्रतिभा ने उसे अभिनव स्पंदन से भर दिया। उसकी प्रकृति आमूल बदल गई। यह यीशु से एकतान होने का अनिवार्य फल है। जब जब यीशु हृदय में अधिष्ठित होते हैं, प्रकृति में आशातीत परिवर्तन हो जाता है। यीशु की विभूति, उन का प्रेम हृदय को कोमल बना देता है, आत्मा को विनम्र कर देता है, विचारों की पृष्ट-भूमि को स्वर्गोंमुख कर उन्नत और इच्छाओं को इश्वारोंमुख कर गौरवयुक्त कर देता है॥

जब यीशु ने स्वर्गारोहण किया, तो उनकी उपस्थिति का भाव उनके शिष्यों में रह ही गया था। यह उपस्थिति का भाव वैयक्तिक भाव था और ममत्व तथा आलोक से पूर्ण सांत्वानाये दीं, वही यीशु शांति के उपदेश देते ही देते उनसे छीन कर स्वर्ग को ले जाया गया। जब दूतों ने बादलों पर उनका स्वागत किया तब उनकी वाणी गूँज उनके पास आती रही, "देखो मैं जगत् के अन्त तक सब दिन तुम्हारे साथ हूँ।" मती २८:२०। उन्हों ने मनुष्य के रूप में स्वर्गारोहण किया। शिष्यों ने यह जान लिया की वे ईश्वर के सिंहासन के पास होंगे, फिर भी उनके परममित्र और मुक्तिदाता रहेंगे। उनके अनुराग और सहानभूति अडिग,

अक्षुण रहेगी। और वे सदा शोकग्रस्त मानवता के प्रतिक रहेंगे। तब वे अपने अमूल्य रक्त-कणों के गुण ईश्वर को दिखलाते होंगे, अपने कटे और लोहू से लथपथ हाथ और पांव दिखलाते होंगे, और कहते होंगे, और कहते होंगे, की मानव-कल्याण के लिये, उनकी मुक्ति के लिये इतनी कीमत चुकाई गई। ये शिष्यगन जानते थे की उन्हों ने स्वर्गारोहण केवल इसी लिये किया था की शिष्यों के लिये स्थान सुरक्षित किया जाय। वे यह भी जानते थे की यीशु फिर से आयेंगे और उन्हें अपने साथ ले जायेंगे॥

स्वर्गारोहण के बाद जब उन्होंने आपस में भेंट की तो यीशु के नाम पर वे अपनी

प्रार्थनाएँ ईश्वर के समक्ष करने को तैयार थे। गंभीर मुद्रा में वे प्रार्थना करने को झुक गए इस निश्चयता को दुहराते हुए की “यदि पिता से कुछ मांगोगे तो वह मेरे नाम से तुम्हें देगा। अब तक तुम ने मेरे नाम से कुछ नहीं मांगा। मांगो तो पाओगे की तुम्हारा आनंद पूरा हो जाय।” योहन १६:२३, २४। उन्हों ने अपने विश्वास को अधिक से अधिक बढाया यह कहते हुए की “मसीह जो मरा वरन जी भी उठा और परमेश्वर की दहिनी ओर है और हमारे लिए बिनती भी करता है।” रोमी ८:३४। और पिन्तेकुस्त के दिन उन्हें धीरज देनेवाला पवित्र-आत्मा मिला जिस के विषय यीशु ने कहा था की वह “तुम में होगा।” यीशु ने और यह भी कहा था, “मेरा जाना तुम्हारे लिये अच्छा है

क्योंकि यदि मैं न जाऊँ तो वह सहायक तुम्हारे पास न आएगा पर यदि मैं जाऊँगा तो उसे तुम्हारे पास भेज दूंगा।” योहन १४:१७; १६:७। अब से आगे ख्रीष्ट पवित्र आत्मा के द्वारा अपने पलकों के ह्रदय में सर्वदा निवास करेगा। यीशु के साथ इन शिष्यों का संबंध पहले की अपेक्षा अब और भी प्रगाढ़ हो गया। क्योंकि अन्तरस्पल में विराजनेवाले यीशु के प्रकाश, प्रेम और शक्ति की किरणों उनके द्वारा प्रकाशित होती थी और देखनेवाले लोगों ने “अचम्मा किया फिर उनको पहिचाना की ये यीशु के साथ रहे हैं।” प्रेरितों के काम ४:१३॥

अपने प्रथम शिष्यों के लिये जो कुछ भी यीशु ने किया, वही वे अपने आज के

सभी पुत्रों के साथ करना चाहते हैं। अपनी अंतिम प्रार्थना में उन्होंने शिष्यों के उस छोटे झुराड से यही कहा था, “मैं केवल इन्ही के लिए बिनती नहीं करता पर उनके लिए भी जो इनके वचन के द्‌वारा मुझ पर विश्वास करेंगे।” योहन १७:२०॥

यीशु ने हमारे लिए भी प्रार्थना की, और वही भिक्षा मांगी की हम उन में एक हों ठीक जैसे की वे पिता में एक हैं। यह कैसा अनुपम संबंध है। मुक्तिदाता ने अपने बारे यह कहा है, “पुत्र आप से कुछ नहीं कर सकता;” “पिता मुझ में रह कर अपने काम करता है।” योहन ५:१६; १४:१०। यदि ख्रीष्ट हम में वास करेंगे तो वे हम में काम करेंगे। “क्योंकि परमेश्वर

ही है जो अपनी सुइच्छा निमित्त तुम्हारे मन में इच्छा और काम दोनों करने का प्रभाव डालता है।” फिलिप्पी २:१३। तब हम वैसे ही कर्म करेंगे जैसे उन्हों ने किये। हम उन का सा भाव प्रदर्शित करेंगे। और इसी प्रकार उन्हें श्रद्‍धा और शक्ति से अपने प्रेम अर्पित करते करते उन में निवास करते करते हम “सब बातों में उस में जो सर है अर्थात मसीह में बढ़ते जाएंगे।” हफिसियों ४:१५॥

9 कर्म और जीवन

विश्व के जीवन, प्रकाश और आनंद ईश्वर ही है। सूरज की प्रभापूर्ण किरणों की तरह, सोते से फूटती हुई अजस्त्र धारा की तरह, ईश्वर के वरदान सभी प्राणियों के समक्ष अवाध गति से प्रवाहित होते हैं। जहाँ भी मनुष्य के ह्रदय में ईश्वर के जीवन का निवास होगा, यह प्रेम और आशीष के साथ एक ह्रदय से दुसरे ह्रदय में सदा प्रवाहित होता रहेगा॥

पतित मनुष्यों के उद्धार और मुक्ति में ही हमारे त्राता को आनंद मिलता था। इस महान कार्य में उन्होंने अपने जीवन तक को तुच्छ समझा और उसकी वेदना

सह ली तथा लज्जा उठाई। उसी प्रकार दूसरों की भलाई करने में स्वर्गदूतगन सदा सचेष्ट हैं। इसी में उनका आनंद है। प्रकृति और पद में निकृष्ट लोगों की सेवा करना तथा उन्हें उन्नत बनाना, ऐसा कार्य है जिसे अन्य स्वार्थी लोग तो नीच और मर्यादा के विरुद्ध समझे। किंतु इसे ही निष्पाप दूतगण आनंद से करते हैं। यीशु के निस्स्वार्थ प्रेम की भावना ऐसी अमृतमयी भावना है जो स्वर्ग को व्याप्त है और स्वर्गीय आनंद का मूलतत्व है। यही भावना यीशु के सच्चे अनुयायियों में भी रहेगी और उनके कार्य में व्यक्त होगी॥

यीशु का प्रेम ह्रदय में प्रतिष्टित हो जाने पर सुगंध की तरह छीप नहीं सकता।

इस का पवित्र भाव उन लोगों पर पड़ेगा जिन से हम संबंध रखेंगे। मरुभूमि की झरना ककी तरह यीशु का प्रेम है जो सर्वों की तृष्णा मिटाने, जीवन देने, तथा नविन शक्ति भर देने को बहता रहता है॥

जिसे यीशु से सच्चा अनुराग होगा सदा यही इच्छा करेगा की उन्हीं की तरह कार्य करे, उन्हीं की तरह मानवमात्र के उत्थान और उद्धार के लिए चेष्टा करे। इस प्रेम से सारी सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिये प्रेम, करुना और ममत्व हो उठेगा॥

मुक्तिदाता का जीवन आराम का जीवन न था। संसार में वे अपने बारे ही चिंतित

होने और आत्मप्रेम में ही रत होने नहीं आये थे। उन्होंने तो पथ भ्रष्ट मानव समाज के उद्धार के लिए अथक परिश्रम किया, अदम्य उत्साह दिखाया और अद्वितीय अध्यवसाय का उदहारण छोड़ा। चरनी से लेकर कालवरी तक, उन्होंने आत्मावज्ञा का मार्ग ग्रहण किया। जीवन पर्यंत उन्हों ने कड़ी यातनाओ, कष्टदायक यात्राओ तथा क्लान्तिदायक चिन्ता और परिश्रम से पिछा नहीं छुड़ाया, और न उन से पिछा छुडाने की कभी चेष्टा भी की। उन्होंने कहा था, “मनुष्य का पुत्र इस लिए नहीं आया की सेवा टहल की जाय पर इस लिए आया की आप सेवा टहल जरे और बहुतों की छुडौती के लिए अपना प्राण दे।” मती २०:६८। यही उनके जीवन का

महान उद्देश था। इस महान लक्ष्य का आगे दूसरी वस्तुएँ महत्व ही नहीं रखती थी। ईश्वर के आदेश की पूर्ति और उनके कार्य का संपादन ही यीशु का भोजन और जल था। उनके परिश्रम के अंतर्गत आत्म-तुष्टि और स्वार्थ को कोई स्थान नहीं था।

जिन्हें ख्रीष्ट के अनुग्रह का प्रकाश मिल रहा है, उन्हें किसी भी बलिदान के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये। इस से वे लोग भी स्वर्गीय वरदान के भागी बन जा सकेंगे जिन लोगों के लिये ख्रीष्ट ने प्राण दिए। वे लोग संसार के सुधारने, उन्नत करने और उज्जवल करने की चेष्टा तथाशक्ति करेंगे। यदि हृदय में यह भावना भर जावेगी तो समझिये की

सचमुच ही आत्मा में आलोक आ गया है। जैसे ही मनुष्य ख्रीष्ट के समक्ष आता है वैसे ही उस में यह भाव उदित होता है की वह दुसरे लोगों को यीशु की मैत्री और अमूल्य प्रेम के बारे कहें और अपना भागे सराहें। यह पुनीत सत्य उसके ह्रदय में दब कर या छीप कर रह ही नहीं सकता। ख्रीष्ट की धार्मिकता का धवल वस्त्र पहन लेने पर, तथा उनके अंतरस्थल में निवास करनेवाले पवित्र आत्मा से पूर्ण हो जाने पर हम अपनी शांति और गंभीरता के साथ बैठे नहीं रह सकते। जहां हम ने यह जान लिया की प्रभु कल्याणकारी है, तहाँ हमारी वाणी प्रशंसा में फूटी। फिलिप ने मुक्तिदाता को पा कर सर्वों को उनकी उपस्थिति से लाभ प्राप्त करने को आमंत्रित किया

था। उसी की तरह हम भी सर्वों को निमंत्रण देंगे, बुलाएँगे और आग्रह करेंगे की सभी उन से लाभ प्राप्त कर ले। उन लोगों को हम ख्रीष्ट के मोहक गुणों को दिखलायेंगे, और उस लोक के सुख और आनंद का वर्णन करेंगे। और यीशु के मार्ग में चखने को हम भी सर्वों के साथ आकुल हो जावेंगे। हम में यह विकल भावना भर जायेगी की हम सभी कोई उस ईश्वर के मेमने को देखें "जो जगत का पाप हर ले जाता है॥"

दूसरों की भलाई के निमित्त जो कार्य हम करेंगे वही कार्य हमारी भी भलाई का कारण बनेगा। ईश्वर ने जो हमे मुक्ति की योजना में कुछ कार्य सौंपे, तो उसका यही प्रयोजन था। उन्हों ने मनुष्यों का

ईश्वरीय प्रकृति के भागी होने का विशेष अधिकार दिया है और फिर मंगलमय आशीर्वाद को दूसरों पर वितरण करने का भी अधिकार दिया है। यही है सब से गौरवपूर्ण सम्मान और सब से महिमामय आनंद हो ईश्वर मनुष्यों के प्रति दे सकता है। जो भी इस प्रेम सने कार्य में ह्रदय से लग जाते हैं वे ख्रीष्ट के सब से निकट पहुँच जाते हैं।

यदि चाहता तो ईश्वर अपने धार्मिक संदेश के वितरण तथा सारे प्रेम पूर्ण कार्यों के संपादन का भर स्वर्गीय दूतों पर सौंप देता। अपने प्रयोजन के लिये वह कुछ दुसरे उपाय भी काम में ला सकता था। किंतु उसने ऐसा नहीं किया। उसका प्यार इतना गहरा है की उसने

हम ही लोगों को अपने साथ काम करने के लिये चुना। उसने अपने साथ, ख्रीष्ट के साथ, स्वर्गदूतों के साथ, अर्थात सभी कल्याणकारी ईश्वरीय विभूतियों के साथ कम करने के लिये हम मनुष्यों को चुन कर लगाया। इस में ईश्वर का उद्देश यही था की ईश्वरीय विभूतियों के सहकर्मी और सहयोगी हो कर हम भी निस्स्वार्थ कर्म के फल अर्थात वरदान, आनंद, आत्मिक उत्थान आदि, प्राप्त कर सकें॥

ख्रीष्ट के क्लेशों और यातनाओं के सहयोगी बन कर हम ख्रीष्ट के साथ हार्दिक समवेदना और सहनुभूति में मग्न हो जाते हैं। दूसरों के उपकार करने के प्रत्येक कार्य द्वारा उपकार करनेवाले

की उदारता, और ईश्वरीय गुण शक्ति ग्रहण करती है और उस मुक्तिदाता के समकक्ष वह आ जाता है, “धनी हो कर तुम्हारे लिए कंगाल बना की उसके कंगाल हो जाने से तुम धनी हो जाओ।” २ कुरिन्थियों ८:६३। और जब हम ईश्वरीय विधान के इस उद्धेश को पूर्ण करेंगे तभी जीवन आशिषमय प्रतीत होगा॥

जिस तरह ख्रीष्ट ने अपने चेल्लों को चलने और काम करने का आदेश दिया, यदि हम वैसे ही चलें और परिश्रम में जुटे रहे, तथा उनके लिये लोगों को ख्रीष्ट के पास लावें, तो हमें आत्मिक वस्तुओं के विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करने की तथा गभीरतम अनुभूतियों में

डूब जाने की उत्कट लालसा होगी। और तभी हम पवित्रता और धार्मिक शुद्धि के पीछे प्राणों की बाजी लगा कर दौड़ेंगे। हम तब ईश्वर से अनुनय-बिनय करेंगे, हमारी भक्ति दृढ़ होती जायेगी, और मुक्ति के कूप से हमारी आत्मा और भी नीचे बैठ कर आनंदमय जल का पान करेगी। ऐसी अवस्था में यदि विरोध परीक्षाएँ हुई तो हम बाहबल और प्रार्थना के सहारे विरोध को रोकेंगे और परीक्षाओं में उत्तीर्ण होंगे। हम ईश्वरीय अनुग्रह तथा विभूति में अधिक से अधिक दीप्त होंगे और यीशु के परिज्ञान में अधिक से अधिक गंभीर होंगे। हमारी अनुभूति प्रषाढ एवं अनूप होगी॥

दूसरों के उत्थान और उद्धार के लिए निस्स्वार्थ कर्म चरित्र को गंभीर, सद्दढ़ और ख्रीष्ट सा मधुर बनता है। इस से मनुष्य शांति और आनंद से मरे जाता है। आकांक्षायें उन्नत हो जाती हैं। इस निष्टा में आलस्य तथा स्वार्थ को स्थान नहीं। जो भी ईसाई अनुभव को प्राप्त करता है वह वृद्धि और विकास पाता है तथा ईश्वर के कर्म करने में अधिक से अधिक शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। ऐसे लोगों की अध्यात्मिक प्रज्ञा और अनुभव तीव्र होते है, और स्पष्ट होते हैं। इनकी भक्ति सदा प्रगाढ़ और विस्तृत होती है। इनकी प्रार्थना की शक्ति बलवती हो जाती है। उनकी जीवन-शक्ति के बिच ईश्वर की प्रेरक-शक्ति काम करतीं रहती है और

ईश्वरीय स्पर्श आत्मा के सारे तारों को स्पंदित एवं झंकृत करती रहती है। जो कोई इस निस्स्वार्थ कर्म में प्रवृत्त हैं एवं दूसरों की भलाई के लिए दत्तचित्त हैं, वे निर्विवाद अपनी मुक्ति का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

ईश्वर के अनुग्रह और विभूति की प्राप्ति के लिए तथा इन्हें अधिक से अधिक बढ़ाने के लिए एक ही उपाय है। वह यह की हम यीशु के बतलाये हुए कार्यों में अनासक्ति के साथ लगे रहें। अपनी सामर्थ्य के अनुरूप, उनकी मदद और कल्याण करें जिन्हें मदद और कल्याण की आवश्यकता है। श्रम करते करते शक्ति आ जाती है। और क्रियाशीलता, अथवा कर्म तो जीवन का धर्म है। जो

लोग अनुग्रह के द्वारा आशीष प्राप्त कर ईसाई जीवन यापन करने का उद्दोग करते हैं पर ख्रीष्ट के लिए कोई कार्य करने का उद्दोग नहीं करते, वे ऐसा जीवन यापन करने की चेष्टा कर रहे है जिस में खाना तो मिलता है लेकिन काम करना ही नहीं पड़ता। और ऐसे जीवन का नतीजा आत्मिक और नैतिक दोनों का विनाशकारी होता है। जो मनुष्य अपने अंगो को परिचालित नहीं करता वह उन अंगो को पंगु और बेकार बना देता है क्योंकि थोड़े ही दिनों में उन अंगों पर उसका कोई बल नहीं चलेगा। उसी प्रकार जो ईसाई अपनी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों को उपयोग नहीं करता वह न केवल ख्रीष्ट में तादात्म्य प्राप्त करने में

ही असफल रहता है किंतु अपनी पहले की शक्तियाँ भी खो बैठता है॥

ख्रीष्ट की मंडली वह केंद्र है जिसे ईश्वर ने मनुष्य की मुक्ति के लिए स्थापित किया है। उसका लक्ष्य और उद्देश सारे जगत में ईश्वरीय समाचार का प्रचार और प्रसार है। और वह काम सारे ईसाईयों के मत्थे सौंपा गया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य और बुद्धि के अनुसार मुक्तिदाता से ख्रीष्ट का प्रेम उदित हो जाता है तो हम उन लोगों के ऋणी हो जाते हैं जो ख्रीष्ट को नहीं जानते हैं। ईश्वर ने हमें ज्योति दी है, वह ज्योति सिर्फ अपने ही लिए नहीं, वरण इन अनभिज्ञ लोगों पर चमकाने के लिए भी॥

यदि ख्रीष्ट शिष्यगन अपने कर्तव्य में सजग रहे, तो एक की जगह हजारों लोग अन्य धर्मावलंबियों के देशों में संदेश का प्रकाश फैलाते चलें। फिर तो जो लोग किसी कारणवश इस कार्य में हाथ न बता सकें हैं, वे अपने धन-बल, समवेदना-सहानुभूति और प्रार्थना से ही इसे सहायता दे सकते हैं। और ईसाई देशों में तो मनुष्यों के उद्धार के लिये और भी शक्ति से काम होगा॥

यदि हमारे घर के देश में ही काम करने का क्षेत्र है तो यीशु के उद्देश की पूर्ति के लिये हमें अन्य धर्मावलंबियों के देशों में जाने का कोई प्रयोजन नहीं। तब तो हम अपने घर पर, मंडली में, दोस्तों के बिच,

व्यापारी लोगों के साथ यह काम पूरा कर सकते हैं॥

हमारे मुक्तिदाता के जीवन का अधिक भाग तो नासरत के बढई की दूकान पर काम करते ही बिता था। जब अज्ञात और असम्मानित रूप में जीवन के प्रभु किसानों और श्रमिकों और मजदूरों के साथ साथ बातचीत करते टहलते थे तो दूतगन उनके पास उपस्थित रहते थे। जब यीशु अपनी छोटी विनीत काम में लगे हुए थे तब भी वे अपने जीवन के उद्देश्य उतनी ही लगन से पूरा कर रहे थे जितनी लगन से वे रोगियों को आराम करने के समय अथवा गलील की अंधड़-तूफ़ान से तरंगित लहरों पर चलते हुए पूरा कर रहे थे। अतएव हम अपने

छोटे से छोटे काम में और नीच से नीच जीवन में भी यीशु के साथ साथ श्रम कर सकते हैं और उनके ऐसा बन सकते हैं॥

प्रेरित ने कहा है, “जो कोई जिस दशा में बुलाया गया हो वह उसी में परमेश्वर के साथ रहे।” १ कुरिन्थ ७:२४। व्यापारी अपना व्यापर इस प्रकार चला सकता है की उसकी भक्ति से उसका परमेश्वर गौरवान्वित हो उठे। यदि वह ख्रीष्ट का सच्चा शिष्य होगा तो अपने प्रत्येक कर्म में धर्म का प्रवेश करायेगा और प्रत्येक आदमी से ख्रीष्ट की आत्मा की बढ़ाई करेगा। मशीन में काम करनेवाला मिस्त्री अपने स्वामी यीशु के जैसा ही उद्‌दोगी, परिश्रमी और स्वामिभक्त होगा तथा ख्रीष्ट के गलील के पहाड़ पर

के श्रम को याद करायेगा। जिस किसी ने भी ख्रीष्ट का नाम लिया है, उसे इस तरह परिश्रम करना चाहिए की उसके काम देख दुसरे भी सृष्टि और मुक्तिदाता की प्रशंसा कर उठें और उन्हें गौरवान्वित कर दें॥

कितने लोगों ने अपनी शक्ति और प्रतिभा ख्रीष्ट की सेवा में खर्च न करने का यह बहाना बनाया है की दूसरों के पास तो उन से अधिक शक्ति और प्रतिभा है। अर्थात धारणा यह बन गई है की जो कोई भी विशेष प्रकार से मेघावी हैं, वे ही अपनी प्रतिभा ईश्वर की सेवा में अर्पित कर सकते हैं। और यह भ्रांति भी आ गई है की मेघा-शक्ति अर्थात प्रतिभा कुछ ही चुने हुए लोगों को मिलती है,

दूसरों को नहीं मिलती और ये दुसरे लोगों को श्रम तथा वरदान में न तो हाथ बताना पड़ता है और न भाग ही मिलता है। किंतु दृष्टांत में कोई ऐसी बात नहीं कही गई है। जब घर के स्वामी ने अपने नौकरों को बुलाया तो उसने हर एक आदमी को अपने काम बांट दिया॥

जीवन के नीच से नीच काम हम पूरी श्रद्धा से करें, जैसे "प्रभु के लिए" करते हों। कुलुस्सी ३:१३। यदि ईश्वर का प्रेम ह्रदय में होगा तो वह जीवन के समस्त वातावरण में परिमल-सुवास भर देगी और हमारी प्रभविष्णुता बढ़ जावेगी तथा दूसरों का मंगल करेगी॥

जब आप ईश्वर के कर्तव्य में संलग्न हो जाने को प्रस्तुत हैं तो आप को किसी बड़े अवसर के लिए ठहरना नहीं चाहिये और न उसके लिये असाधारण शक्तियों की ही आशा करनी चाहिये। ऐसा विचार न कीजिये की दुनिया आप के बारे क्या सोचेगी। यदि आप के नित्य का जीवन आप की भक्ति की पवित्रता और निश्चयता की साक्षी देता है, और दुसरे लोग यह विश्वास करते हों की आपकी एक मात्र इच्छा उन लोगों का उपकार करना है, तो आप की चेष्टायें सम्पूर्ण रूप से विफल नहीं होगीं॥

यीशु के नीच से नीच और दरिद्र से दरिद्र शिष्य भी दूसरों के हित के लिए वरदान के रूप में महान बन सकते है। भलाई

करते वक्त वे यह नहीं जान सकते की कोई विशेष लाभ वे कर रहे हैं, किंतु अप्रत्यक्ष प्रभाव के द्‍वारा वे उपकार और लाभ की झड़ी लगा दे सकते हैं। इन के उपकार अनजाने ही विस्तृत और गंभीर होते जाते हैं। अपने उपकार के महान फल वे देख भी न सकेंगे। यदि कभी वे इन्हें जान सकेंगे तो अन्तिम प्रतिफल के ही दिन। अपनी नम्रता और दीनता के कारण उन्हें यह ज्ञान अथवा अनुभव नहीं होता की वे एक महान कार्य कर रहे हैं। वे अपने कार्यों की सफलता की चिंता में भी परेशान नहीं होते। उन्हें तो चुपचाप ईश्वर के कर्म सच्चाई से करते हुए आगे बढ़ चलना ही आता है। ऐसे लोगों का जीवन निरर्थक नहीं। इन की आत्मा नित्य यीशु की समता में बढती

जावेगी। इस जीवन में वे ईश्वर के सकर्मी हैं और आने वाले जीवन के लिए अपने आप को तैयार कर रहे हैं। उस आनेवाले जीवन के कार्य महत्तर हैं और आनंद महान हैं॥

10 ईश्वर के बारे ज्ञान

ईश्वर कई उपायों से अपना ज्ञान हम लोगों के अन्दर उध्दोधित करता है और हमें अपने समापम में लाता है। सारी प्रकृति हमारी ज्ञानेंद्रियों से उसके बारे आदि काल से कहती आ रही हैं। उसके हाथ की सृष्टि से ही प्रेम और विभूति प्रगट हो रही है, उसे उदार ह्रदय निश्चय ग्रहण करेगा और विमुग्ध हो जायेगा। प्रकृति की वस्तुओं के द्‍वारा जो संदेश ईश्वर प्रेषित करता है उसे सुननेवाले निश्चय ही सुनेंगे और समझेंगे। शस्य श्यामला भूमि, हरी वृक्षावलियाँ, कलित कलियाँ और सुषमित सुमन सजल श्यामल मेघ, रिमझिम बरसता पानी, कल कल नितादिनी सरिता, आकाश के

प्रभापूर्ण नक्षत्र हमारे ह्रदय में ईश्वर के संदेश भेजते हैं और अपने स्त्रष्टा के परिज्ञान के लिए हमें निमंत्रण कर कहते हैं की आइये, हमें देखिये और ईश्वर को जो हमारे स्त्रष्टा हैं समझ लीजिये॥

हमारे मुक्तिदाता ने अपने अमूल्य उपदेशों को प्रकृति को वस्तुओं से सजाया था। वृक्ष, विश्राम, तराई के राशि राशि पुष्पदल, पर्वत, झील और सज्जित दीप्त आकाश, तथा दैनिक जीवन के साधारण व्यापार उन के उपदेश के साथ सदा जुटे रहते और सत्य तथा वास्तविक जीवन का सम्मिश्रण उपस्थित करते। इस सम्मिश्रण से लाभ यह होता की उनके सत्य के उपदेश

मनुष्य को अपने कार्य-संकुल और श्रम-पूर्ण जीवन में भी याद आ जाते थे॥

ईश्वर अपने पुत्रों द्वारा अपने कार्यों की प्रशंसा और समीक्षा सुनना चाहता है। वह यह भी चाहता है की जिस सरल स्निग्ध तथा गंभीर रूप से हमारे पार्थिव घर को सुसज्जित किया है उसकी मनोमुग्धकारी सुषमा से हम आनंद-विभोर हो उठें। वह सौंदर्य का अनुरागी है और बाह्य सुषमा से अधिक वह चरित्र के सौष्ठव का प्रेमी है। वह यह चाहता है की कुसुमों के कमनीय सौंदर्य और कोमल सरलता की तरह हम अपने चरित्र में पवित्रता का सौंदर्य और कोमल सरलता ले आयें॥

यदि हम सुनें, तो ईश्वर की सृष्टि हमें आज्ञा-पालन और विश्वास के अनेक उपदेश सुनाये। उन तारनों से लेकर जो अपनी कक्षा में शुन्य नम्बर के निस्सीम पथ पर युग युग से चलते आ रहे हैं, पृथिवी के परमाणु कणों तक सृष्टि के सभी पदार्थों में ईश्वर की आज्ञा के पालन के उदहारण दिखाई पड़ सकते हैं। ईश्वर सबों पर ध्यान देता है और जितनी भी वस्तुएँ उसने सृष्टि की सर्वों का पालन-पोषण करता है। इस अनंत विश्व के राशि राशि गृह मंडल और नक्षत्र-मंडल का जो संरक्षक है वही उस छोटी सी गौरेये की आवश्यकता को पूर्ण करता है, जो निडर बैठ कर उस छोटी डाली से अपने सरल एवं सरस संगीत सुनाती है। जब मनुष्य अपने दैनिक श्रम

में व्यस्त होने जाते हैं और जब वे प्रार्थना में तल्लीन रहते है; जब रात्रि में विश्राम करते है और जब प्रात:काल जाग उठते हैं: जब वैभवशाली अपने राजमहल में दावत करता है अथवा जब दरिद्र किमान अपने बच्चों को सुखी रोटी बांटता है, इन सभी समयों में ईश्वर के द्‌वारा इन सारे प्राणियों का निरिक्षण होता है। कोई ऐसी आंसू नहीं जो ईश्वर की द्दष्टि में नहीं पड़ती। कोई ऐसी मुस्किराहट नहीं जिस पर वह ध्यान नहीं डालता॥

यदि हम लोग इन बातों पर पूर्ण रूप से विश्वास करें, तो सारी व्यर्थ की दुश्चिंताएँ मिट जाँय। तब हमारे जीवन में इतनी उदासी नहीं रहे, क्योंकि सारे

काम तो उसके हाथों सौंप रहे और वह चिंताओं और कार्यों के भर से न तो घबराता है और न उनकी गुरुता से ऊगता है। ऐसा करने पर ही हमारी आत्मा में वह शांति आयेगी जिसका स्वाद अनेकों ने नहीं चखा॥

जब आप की ज्ञानेन्द्रिया इस लोक की सुषमा पर मुग्ध होती हैं तो कल्पना कीजिये की उस लोक की सुषमाश्री पर आप किस तरह लट्टू हो जायेंगे। वहाँ की श्री सुषमा उज्जवल निष्कलंक और अमृत है। वहाँ के सौंदर्य में श्राप की कालिमा नहीं। आप की कल्पना उस स्वर्गीय गृह को इतनी सुखद होगी की आप इसी मई रत रहेंगे किंतु वास्तविक स्वर्गीय गृह आप की कल्पना से अधिक

मधुर, सुंदर और आलोक पूर्ण है। इस लोक की सुषमा में हम ईश्वर की विभूति को एक झलक मात्र देखते है। धर्मशास्त्र में ऐसा लिखा है, “जो आँख ने नहीं देखा, कान ने नहीं सुना और जो बातें मनुष्य के चित्त में नहीं चढ़ी वे ही हैं जो परमेश्वर ने अपने प्रेम रखनेवालों के लिए तैयार की है।” १ कुरिन्थियों २:८॥

कवी और प्रकृति-विज्ञान के विशारद प्रकृति के बारे बहुत कहेंगे किंतु यदि प्रकृति की मनोमुग्धकारी सुश्मराशी का कोई आनंद लेता है तो वह ईसाई ही है। क्योंकि वह उन पदार्थों में ईश्वर की नीरागता और कौशल पहचान सकता है, और वही पुष्पों, झाड़ियों और वृक्षों में ईश्वर का प्रेम देख सकता है। जो व्यक्ति

पर्वत, तराई, नदी और समुद्र को मनुष्य के प्रति परमेश्वर के प्रेम के घातक स्वरुप नहीं मानता है, वह इन वस्तुओं की महत्वता को पूर्णत: अनुभव नहीं कर सकता है।

ईश्वर हम लोगों में अपने ऐश्वरिक कार्यों के द्‌वारा, अथवा अपने पवित्र आत्मा के द्‌वारा हमारे ह्रदय में प्रकाश और प्रभाव के द्‌वारा बाते करता है। अपनी परिस्थितियों में, च्तुर्दिक होनेवाले परिवर्तन में कितने उपदेश छुपे पड़े है। यदि हमारा ह्रदय ग्रहण कर सके तो इन अमूल्य उपदेश पा ले। स्तोत्रकर्ता ने ईश्वर की इस लीला के बारे कहा है, “यहोवा की करुणा से पृथिवी भरपूर है।” भजन संहिता ३०:४। “जो कोई

बुद्धिमान हो तो इन बातों पर ध्यान करेगा, और यहोवा की करुणा के कामों को विचारेगा।” भजन संहिता १०६:४३॥

ईश्वर अपने वचनों के द्वारा हम लोगों से संभाषण करता है। यहाँ हम उसके चरित्र को स्पष्ट रूप से समझ सकते है। वहाँ हम उसके मनुष्य के प्रति व्यवहार जान सकते हैं। मुक्ति के महान कार्य भी हम यहीं पहचान पाते हैं। यहाँ हमारे पूर्वजो, भविष्य-दुताओं और अन्य पवित्र लोगों की जीवनी और इतिहास है। “वे भी हमारे समान दू:ख सुख भोगी मनुष्य थे।” याकूब ५:१७। वे भी संघर्ष करते हुए, विफल-मनोरथ होते हुए हम लोगों की तरह ही रहे। उन्होंने ईश्वर के अनुग्रह से विजय पाई। उन्हें सफल होते देख हम

लोगों में भी उत्साह भर आता है और पवित्रता के संग्राम में हम पुन: भीड़ जाते हैं। जब हम पढ़ते हैं की उनके अनुभव कितने अमूल थे, उन्हें कितनी प्रभा पूर्ण जीवन, ज्योति और जाग्रति मिली, और अनुग्रहित हो उन्होंने कैसे कल्याणपद काम सम्पादित किये, तो हम भी समर्थ हो जाते हैं। जिस आत्मा से वे अनुग्रहित हो गये, उसी आत्मा से हमारे ह्रदय में भी उत्साह और शक्ति की चमक फैल जाती और हम में भी यह लालसा हो आती है की हम उनके अनुरूप हो जाँय और उन्ही की तरह ईश्वर के साथ साथ चलें॥

यिशुने पुराने नियम में जो कहा था, वह नये नियम पर और भी अधिक कत्थ रूप में लागू होता है। उन्होंने कहा था, “यह

वही है जा मेरी - मुक्तिदाता की जिस पर हमारा अनंत जीवन निर्भर करता है - गवाही देता है।” योहन ५:३८। सारी बायबल ख्रीष्ट के बारे गुणगान करता है। सृष्टि के प्रथम उल्लेख से - क्योंकि “जो कुछ उत्पन्न हुआ उस में से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न न हुई” - लेकर अन्तिम वचन तक “देख मैं शीघ्र आने वाला हूँ।” हम केवल उनके कार्यों का वर्णन पढ़ते और उन्ही की वाणी सुनते हैं। यदि आप मुक्तिदाता को पहिचानना चाहते हैं तो पवित्रशास्त्र का मनन कीजिये॥

अपने ह्रदय के कोने काने में यीशु के शब्द भर दीजिये। आप की भारी तृष्णाओं को शांत करने के लिए वे

जीवनमय जल हैं। वे स्वर्गीय भोजन हैं। यीशु ने तो यह घोषणा की है, “जब तक मनुष्य के पुत्र का मांग न खाओ और उसका लाडू न पाओ तुम में जीवन नहीं।” फिर वे इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं, “जो बातें मैंने तुमसे कही हैं वे आत्मा हैं और जीवन भी हैं।” योहन ६:५३, ६३। हमारे शरीर उन्हीं वस्तुओं से बनते हैं जिन्हें हम खाते पीते हैं। अब जो बात प्रकृति रूप में ठीक है वही आध्यात्मिक विषय में भी लागू है। जिस विषय पर हम एकनिष्ट चिंतन करेंगे, जिसकी साधना में हमारे ह्रदय और मस्तिष्क लगा रहेगा वही हमारे आध्यात्मिक स्वाभाव में शक्ति और सौम्य भरेगा॥

मुक्ति का विषय ऐसा मधुर विषय है की दुतगन इस पर सदा ध्यान देते हैं। मुक्ति एक ऐसी मधुर वस्तु है की मुक्तिप्राप्त लोगों के लिए वह अनंत काल तक सारे विज्ञान का केंद्र और सारे संगीत का स्त्रोत रहेगा। अतएव उस पर गंभीर चिंतन करना और मनन करना क्या अनुचित है? यीशु की निस्सीम करुणा और प्रेम, हमारे लिए उनका अद्‌वितीय आत्मोत्सर्ग आदि ऐसी बातें हैं जिन पर गंभीर चिंतन करना हमारा कर्त्तव्य है। हमें सदा अपने प्रिय त्राता और मध्यस्त के चरित्र पर ध्यान देना चाहिये। हमें सर्वदा उनके संदेश और उद्‌देश का गंभीर विवेचन करना चाहिये जिन्होंने अपने मानव समूह को पाप से बचने के लिए जगत मैं पदार्पण किया

था। जब हम इन स्वर्गीय विषयों पर एकनिष्ट चिंतन करेंगे तो हमारा विश्वास प्रगाढ़ होगा, प्रेम गंभीर होगा और हमारी प्रार्थनाएँ ईश्वर को अधिक से अधिक स्वीकार होंगी क्योंकि उन प्रार्थनाओं में अधिक सें अधिक विश्वास और प्रेम भरे रहेंगे। तभी प्रार्थनाएँ चमत्कार पूर्ण और स्पष्ट रहेंगी। यीशु पर तब और भी गहरा भरोसा रहेगा और उनकी शक्ति का नित्य जीवित अनुभव होगा की हो उसके पास आते हैं उनका वह पूरा पूरा उद्धार कर सकता है॥

अपने मुक्तिदाता का हम जितना ध्यान लगायेंगे, उतनाही अधिक हम अपने में परिवर्तन लाना चाहेंगे और अपने को उनकी पवित्रता का अनुरूप चाहेंगे। जिस

मसीह को हम भजते हैं उनके जैसा हो जाने की भूख और प्यास हमारी आत्मा में ज्वालायें उठायेगी। यीशु पर विचार जितनी तेजी से केन्द्रित होंगे उतनी ही तत्परता से हम उनका वर्णन दूसरों के समक्ष करेंगे और संसार में उन्हें प्रचारित करेंगे॥

बायबल केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं लिखा गया था। बल्कि वह तो साधारण जनता के लिए बना था। वे बड़ी शिक्षाएँ जो हमारे उद्धार के लिए आवश्यक हैं, दोपहर की धुप की नाई इतनी स्पष्ट कर दी गई है की उसे पढ़ कर कोई भी अपने सत्य के पथ से भटक नहीं सकता। हाँ, यदि वह ईश्वर की प्रगट इच्छा और आदेश के अनुसार न

चल कर अपने विचार से चले, तो बात दूसरी है॥

पवित्रशास्त्र के बारे दूसरा आदमी हमें जैसा समझा दे वैसा ही समझ लेना उचित नहीं हमें तो चाहिये के पवित्रशास्त्र, परमेश्वर के वचन को खुद पढ़े और खुद समझे। यदि दूसरों की समझ से ही हम समझने के आदि हो जायेंगे तो हमारी शक्ति ही पंगु हो उठेगी और योग्यता नष्ट हो चलेगी। ऐसा करने से मस्तिष्क की शक्तियों के विकास के लिए यदि ऐसे गंभीर और रोचक विषय न मिलें और उनका नित्य व्यवहार न हो तो ईश्वर के वचन के गूढ़ अर्थ को समझने की शक्ति न रहेगी। मस्तिष्क तभी विकसित होगा जब उसे बायबल के

विषयों के संबंध पता लगाने में, एक पद से दुसरे पद के साथ तुलना और समीक्षा करने में, तथा अध्यात्मिक वस्तुओं का अन्य अध्यात्मिक पदार्थों से मिलान करने में लगाया जाय॥

बुद्धि के विकास के लिए धर्मशास्त्र के अध्ययन के सिवा और कोई अन्य साधन उतना लाभप्रद नहीं। कोई भी पुस्तक या ग्रंथ इस प्रकार से विचारों को उन्नत और शक्तियों को बल और स्फूर्ति प्रदान नहीं कर सकता जैसा बायबल का सारभौम और सनातन सत्य कर सकता है। ईश्वर के वचनों का अध्ययन और अनुशीलन करने से मनुष्यों का ह्रदय इतना उदार और विशाल, मस्तिष्क इतना सहिष्णु और

करुणापूर्ण, चरित्र इतन उच्च और भव्य, उद्देश्य इतने संगलमय और दृढ़ हो जायेगे की जिसका बराबरी का होना आजकल दुर्लभ है॥

लेकिन धर्मशास्त्र की उडती नजर से पढाई से लाभ प्राप्त करना असंभव है। आप सारा बायबल शुरू से आखिर तक चाट लेंगे लेकिन कहीं सौंदर्य की झलक अथवा गूढ़ रहस्य का उध्दटन न पायेंगे। इस के उलटे आप एक ही वाक्य पढ़ कर उसका मनन और चिंतन करें और गूढ़ अर्थ हृदयंगम कर मुक्ति के मार्ग में उसका क्या उद्देश्य है यह समझ लें, तो निरुद्देश्य और निरर्थक कई परिच्छेद पढ़ जाने से आप को अधिक लाभ होगा। अपना बायबल अपने पास सदा रखिये।

जहाँ मौका मिले पढ़ जाईए; उसके पदस्थल याद रख लीजिये । सड़क पर चलते हुए भी आप एक दो पदस्थल पढ़ कर उसका मनन कर सकते है और उसे स्मृति पटल पर अंकित भी कर ले सकते हैं॥

बुद्धि और विवेक ऐसे नहीं आते। जब तक पूरी लगन से चेष्टा न की जाय और पूरी प्रार्थना की आकुलता से पठन और मनन न होगा, ज्ञान प्राप्त करना असंभव है। धर्मशास्त्र के कुछ भाग तो ऐसे सरल और सहज हैं की वे भ्रांति से कोसों दूर हैं। किंतु कुछ ऐसे भी हैं जिनके अर्थ ऊपर में ही पढ़े नहीं मिलेंगे। उन्हें मनन करना हो होगा। धर्मशास्त्र के एक पद की तुलना दुसरे पद के साथ की

जानी चाहिये। धर्मशास्त्र के अंतर में प्रवेश करने के लिए अनुसंधान और खोज करनी होगी और साधना में लीन रहना ही पढ़ेगा। ऐसे पाठ से ही उचित पुरस्कार प्राप्त हो सकता है। जैसे भूगर्भ विधान में निपुण लोगों को खात के अन्दर जमीन में छिपे हुए बहुमूल्य धातुओं के नस मिल जाती है, उसी प्रकार जो ईश्वर के शब्दों के भीतर बैठ कर गहरे पानी के निचे खोजता है वह अनेक ऐसे बहुमूल्य सत्य के रत्न प्राप्त करता है जिन्हें असावधानी से पढनेवाले लोग देख भी नहीं सकते। स्फूर्ति और जीवन ज्योति से भरे सत्य के वचन जब हृदय में अंकित हो जायेंगे तो वे जीवन की फूटती हुई निर्झरिणी की तरह रहेंगे॥

बिना प्रार्थना के बायबल पढना सर्वथा अनुसूचित है। इसके पुष्टों को खोलने के पहले हमें पवित्रात्मा के प्रकाश की याचना कर लेनी चाहिये। याचना करने से परकाश निश्चय प्राप्त होगा। जब ततनयल यीशु के पास आया, तो मुक्तिदाता ने कहा, “देखों यह सचमुच इस्त्राइली है इस में कपट नहीं।” ततनयल ने पुचा, “तू मुझे कहाँ से पहचानता है?” यीशु ने उत्तर दिया, “उससे पहले की फिलिप्पुस ने तुझे बुलाया जब तू अंजीर के पेड़ तले था तब मैं ने तुझे देखा था।” योहन १:४७, ४८। इसी प्रकार यीशु हमें भी अपने प्रार्थना के गुप्तस्थानों में देखेंगे। यदि हम प्रार्थना करेंगे और उन से प्रकाश की याचना करेंगे तो हम किसी भी गुप्तस्थान में

क्यों न हो। वे हमें निश्चय देख लेंगे और प्रकाश देंगे ताकि हम सत्य को जान सकें। जो लोग विनम्र हो कर ईश्वरीय नेतृत्व की याचना करते हैं उनके साथ आलोकित स्वर्ग लोक के दूतगण चलते हैं॥

पवित्र आत्मा मुक्तिदाता को उन्नत एवं भव्य बनता है। ख्रीष्ट को, उसकी धार्मिकता की पवित्रता को, तथा उसके द्वारा हमारा जो महान उध्दार हुआ है उसे प्रकट करना उसी का काम है। यिशुने कहा है। “वह मेरी महिमा करेगा क्योंकि वह मेरी बातों में से लेकर तुम्हें बताएगा।” योहन १६:१४। केवल सत्य का आत्मा ही हमें ईश्वरी सच्चाई को अच्छी तरह सिखला सकता है। ईश्वर

मनुष्य जाती पर कितनी श्रद्धा करता है की उसने अपने प्रिय पुत्र को बलिदान करने के लिए भेजा और अपने आत्मा को वह शिक्षा देने और सत्य के मार्ग पर बराबर चलने के लिए भेजता है॥

11 प्रार्थना का विशेष सुयोग

प्रकृति और प्रत्यक्ष दर्शन के द्‍वारा, अपने विधान के द्‍वारा और अपनी आत्मा के प्रभाव के द्‍वारा ईश्वर हम लोगों से बातें करता है। किंतु ये यथेष्ट नहीं है; हमें भी तो अपने विचार उनके समक्ष रखने चाहिये। आध्यात्मिक जीवन और स्फूर्ति के लिए हमें सदा ईश्वर के साथ साक्षात्कार और समागम करना पड़ेगा। हम उनकी ओर ध्यानावस्थित हो सकते हैं, उसके कार्यों का गंभीर चिंतन कर सकते है, उनकी करुणा और उपकार का मनन कर सकते हैं। किंतु समागम का पूर्ण श्रेय यही नहीं। समागम की पूर्णता तभी होगी जब हम

ईश्वर से अपने वास्तविक जीवन के बारे कुछ कहें॥

प्रार्थना में हमारा ह्रदय ऐसा खुल जाता है जैसे वह एक मित्र के सामने खुल गया हो। हम क्या हैं, यह बतलाने के लिए प्रार्थना आवश्यक नहीं। किंतु प्रार्थना इस लिए आवश्यक है की हम उसका स्वागत करने के योग्य बने। प्रार्थना ईश्वर को हमारे पास खिंच नहीं लाती किंतु यह हमीं को ईश्वर के पास भेज देती है। जब यीशु संसार में निवास कर रहे थे तो उन्हों ने अपने शिष्यों को प्रार्थना करने की उचित रीती बतलाई थी। उन्हों ने शिष्यों को नित्य की आवश्यकताएँ और अपनी सारी चिंताएँ ईश्वर के पैरों पर अर्पित कर देने का आदेश दिया था। और

उन्होंने शिष्यों को यह वचन दिया था की उनकी प्रार्थनाएँ स्वीकार की जायेंगी। यीशु का यह वचन जैसे शिष्यों के लिए सत्य है वैसे ही हम लोगों के लिए भी सत्य है॥

जब यीशु मनुष्यों के बीच जीवन यापन कर रहे थे, तो वे स्वयं प्रार्थना में लगे रहते थे। हमारे मुक्तिदाता हम मनुष्यों के सदृश हो कर, हमारी आवश्यकताओं और दुर्बलताओं का नमूना हो गए। इसी लिए तो वे प्राणी हुए और उन्हों ने याचना की, की परमपिता उन्हें शक्ति और सामर्थ्य दें ताकि सारी पीडायें और क्लेश वे धीरता के साथ सहन कर सकें। सब बातों में वे हमारे आदर्श हैं। किंतु निष्पाप होने के कारण उनकी प्रकृति

दुर्बलताओं से पृथक रहती। उन्हों ने पाप-संकुल जगत में संघर्ष किये, आत्मा की यातना सही। उनके अन्तर के मानव ने प्रार्थना को अवांच्छ्नीय बना दिया। और प्रार्थना अब लाभप्रद भी हो गई। जब जब वे प्रार्थना में बैठे ईश्वर के साथ संभाषण करते, तो आत्मा में शांति और आनंद भर जाते। अब यदि मनुष्य के त्राता और ईश्वर के पुत्र ने प्रार्थना की विशेष आवश्यकता समझी, तो हम दुर्बल, पापी और विनाशशील लोगों को उसकी कितनी आवश्यकता है, यह समझने की बात है। हमें तो नित्य प्रार्थना में ही डूबे रहना चाहिये॥

हमारे स्वर्गीय पिता हम पर वरदानों की झड़ी लगा देने को अपने भरे हुए ह्रदय से

तैयार बैठे हैं। हमें यह विशेष अधिकार प्राप्त है की असाध प्रेम के सोते से जितना चाहें पी लें। लेकिन आश्चर्य तो इस बात का है की हम तब भी कितना कम प्रार्थना करते हैं। ईश्वर अपने प्रिय पुत्रों से नीच से नीच तक की सच्ची प्रार्थना सुनने को तैयार हैं। किंतु हम कितने गिरे हुए हैं की प्रार्थना करने में अनाकनी करते हैं और अपनी आवश्यकतायें बताने में हिचकिचाते है। जब ईश्वर के असीम प्रेममय ह्रदय में मनुष्यों के प्रति अगाध ममत्व भरा है, और हमें अधिक से अधिक वरदान देने को वह लालायित हैं, तो हमारी भोगलिप्सा में डूबे और पापी मन को प्रार्थना के इतने विरुद्ध और विश्वास तथा भक्ति से इतनी दूर देख कर स्वर्ग

के दूत-गण हमारी नीचता की कैसी निकृष्ट धारणा बनाते होंगे? दूत गण प्राणपन से ईश्वर के पैरो पर झुकाना चाहते हैं; वे उसके समीप रहना बहुत पसंद करते हैं। ईश्वर के साथ समागम उनका श्रेष्ट आनंद है। किंतु जिन मनुष्यों को ईश्वर की सहायता और अनुग्रह की अवांछनिय आवश्यकता है, वे ही ईश्वर की विभूति के बिना, ईश्वर के समागम के बिना जीवनाधिकार में गिरते पड़ते चलना श्रेयस्कर समझते हैं॥

जो प्रार्थना नहीं करते वे शैतान के चंगुल में फंस जाते है। जिन पर पापो का घटाटोप अंधकार छाया रहता है। मनुष्य के शत्रु के चपेट में पढ़ कर वे पाप में

संलग्न हो जाते हैं। और यह सब कुछ इस लिए होता है क्योंकि ईश्वर-पदत्र प्रार्थना के विशेष अधिकार को वे ठुकरा देते हैं। जब प्रार्थना वह कुंजी है जो विश्वास के हाथो से ईश्वर की सारी निधियों के अगार स्वर्ग के द्वार खोज सकती हैं, तो ईश्वर के पुत्र और पुत्री प्रार्थना करने से क्यों पीछे भागती हैं? जब तक हम निरंतर प्रार्थना सें सलग्न नहीं रहते और पूरी सावधानी से सतर्क नहीं रहते तब तक हम सदा निश्रेष्ट और असावधान होने के डर में पड़े रहते और सत्य के पथ से विमुख हो जाने के खतरे में गिरे रहते हैं। वह सदा वह चाहता है की हम अनुनय, विनय और विश्वास द्वारा ईश्वर की विभूति और अनुग्रह न

प्राप्त कर लें, और परीक्षाओं का सामना करने की सामर्थ्य न पावें॥

कुछ शर्ते है जिन्हें पूरी करने से ही हम ईश्वर से आशा कर सकते है की वह हमारी प्रार्थना सुनेगा। उन शर्तों में एक शर्त यह हैं की हम उसकी सहायता की आवश्यकता ह्रदय में महसूस करें। उसने यह प्रतिज्ञा की है की “मैं प्यासे पर जल और सुखी भूमि पर धाराएँ बहाऊंगा।” यशायाह ४४:३। अतएव जिन्हें पवित्रता और धर्म की सच्ची भूक और प्यास हैं, जिन्हें ईश्वर की सच्ची ललक है, उन्हें यह विश्वास कर लेना चाहिये की उन की भूख, प्यास और ललक शांत की जायेगी। ईश्वर के वरदान के लिए, पवित्रात्मा के प्रभाव की आवश्यकता है।

पवित्रता के प्रभाव के लिए ह्रदय के कपाट खुले रहने चाहिये अन्यथा ईश्वर का आशीर्वाद मिल ही नहीं सकता॥

हमारी आवश्यकताएँ स्वंय हम लोगों से बहस कर रही है, और हमारे उद्धार के लिए खुद पर ओर तकरीर करती हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर को ढूँढ़ लेना बहुत जरुरी है। उसने कहा है, “माँगो तो तुम्हे दिया जाएगा,” और “जिसने अपने निज पुत्र को भी न रख छोड़ा पर उसे हम सब के लिए दे दिया वह उसके साथ हमें और सब कुछ क्यों कर न देगा।” रोमी ८:३२॥

यदि हम हृदय में पाप को छिपायें रखें और किसी जाने पहचाने पाप में जुटे रहे,

तो ईश्वर हमारी एक भी न सुनेगा। किन्तु प्रायश्चित में डूबे हुए मग्न ह्रदय की सभी प्रार्थनाएँ स्वीकृत होती हैं। जब सभी भूले सुधर गई, तो हमें निश्चित विश्वास करना चाहिए की हमारी अर्जी मंजूर होगी। ऐसे तो हम में कोई गुण नहीं जो हमारी सिफारिश ईश्वर से कर दे। किंतु यीशु की उदारता ही वह वस्तु है जो हमारी रक्षा कर सकती है। उनका लहू ही हमें धोकर निर्मल कर सकता है। फिर भी हमें कुछ करना है ही और वह है ईश्वर की दी हुई शर्तों को पूरा करना॥

प्रार्थना स्वीकार कराने की दूसरी शर्त विश्वास है। “परमेश्वर के पास आनेवाले को विश्वास करना चाहिये की वह है और अपने खोजनेवालों को बदला देता है”।

यीशु ने अपने शिष्यों से कहा था, “जो कुछ तुम प्रार्थना करके मांगो प्रतीत कर लो की तुम्हे मिल गया और तुम्हारे लिए हो आएगा।” मार्क ११:२४। क्या हम उसके वचन पर पूरी तरह विश्वास करते हैं?

यीशु की प्रतिज्ञाएँ असीम है, विस्तृत उसका क्षेत्र है। जिसने प्रतिज्ञा की है वह विश्वास योग्य है। यदि हम जिन चीजों को मांगे और वे हमें न मिलीं, तब भी हमें विश्वास यह करना चाहिये की ईश्वर सब सुन रहा है और वह निश्चय हमारी मांगे पूरी करेगा। कभी कभी तो ऐसा भी होता है की अपनी गलतियों और अदूरदर्शिता के कारण हम ऐसी वस्तुएँ माँग लेते हैं जो हमारे हित के लिए न

होंगे। किंतु हमारे स्वर्गीय पिता प्यार से उनकी जगह ऐसी वस्तुएँ दे देता है जो हमारे कल्याण के लिए सब से आवश्यक हैं। उन चीजों को हम स्वयं मांगते यदि हम में ईश्वरीय ज्योति होती और हम उस ईश्वरीय प्रकाश में सभी वस्तुओं के उचित रूप और गुण देख लेते। यदि हमारी प्रार्थनाएँ पूरी न होतीं मालूम पड़े तो हमें ईश्वर की प्रतिज्ञा पर अडिग रहना चाहिये; क्योंकि प्रार्थना स्वीकृत होने का समय कभी न कभी अवश्य आयेगा और आवश्यक वरदान अवश्य मिलेंगे। किंतु यह विचार करना की सभी प्रार्थनाएँ एक ही तरह से सुनी जायेगी और जिस विशेष वस्तु की आवश्यकता है वह जरुर मिलेगी, निरी कल्पित ढोंग है। ईश्वर गलती करने से बहुत परे है

और इतना नम्र है की सच्चे मार्ग के पथिक को किसी भी आवश्यकता की वस्तु से वंचित नहीं रख सकता। अतएव यदि अपनी प्रार्थना का कुछ भी फल तुरंत न देखे तब भी उन पर विश्वास और भरोसा करने से पीछे मत मुड़िये। उनकी इस विश्वसनीय प्रतिज्ञा “मांगो तो तुम्हे दिया जायेगा” पर विश्वास कीजिए॥

यदि हम लोग अपने संशय और भय से प्रेरित हो अपनी विचारधारा परिवर्तित कर लें, अथवा जिन वस्तुओं को पूरी तरह देख नहीं सकते उनके रहस्य को भी स्वयं सुलझाने को आगे बढ़ जाँय, और विश्वास तथा भक्ति के उदय के लिए ठहरे नहीं, तो उलझन बढ़ जायेगी और

समस्या और गंभीर हो जायेगी। किंतु यदि नम्रता के साथ, अपनी दुर्बलताओं को पहिचानते हुए, हम ईश्वर के पास विनीतता और भक्ति के भाव भरे ह्रदय से आ जाँय और उस सर्वज्ञ से अपनी सारी आवश्यकतायें कह सुनायें तो वह सर्वदृष्टि और सर्वशक्तिमान ईश्वर हमारी चित्कार सुनेगा, और हमारे करुण कंदन से निश्चय ही पिघल उठेगा तथा हमारे ह्रदय में ज्योति विखेर देगा॥

सच्ची प्रार्थना के द्वारा हम उस अनादी अनंत परमेश्वर के मस्तिष्क के साथ संबंध प्रथित कर लेते हैं। हमारे पाप कोई प्रत्यक्ष साक्षी इस बात की नहीं किंतु बात यथार्त ऐसी है की जब हम प्रार्थना करते हैं तो हमारे मुक्तिदाता करुणा

और प्रेम से गद्‌गद हो कर अपना गंभीर मुख हम पर झुका लेते है। हम उनके हाथों के स्पर्श का अनुभव नहीं कर सकते किंतु सचमुच उनके कोमल हाथ ममता और दयापूर्ण स्नेह में हमारे ऊपर फिरते रहते हैं॥

जब हम ईश्वर से क्षमा और उपकार की याचना करने जाँय तो अपने हृदय में प्रेम और क्षमा के माप भर लें। अन्यथा हम कैसे यह प्रार्थना कर सकते है की “जैसे हम ने अपने अपराधियों को क्षमा किया वैसे ही हमारे अपराधों को क्षमा कर।” मति ६:१२। ऐसी प्रार्थना करते हुए हम किसी प्रकार क्षमाहिन भाव से क्रूर बने रह सकते है! यदि हम अपनी प्रार्थनाओं को सुनाना चाहते हैं और

उनकी स्वीकृति के इच्छुक हैं तो जिस मात्र में स्वयं क्षम्य होना चाहते है उसी मात्र में दूसरों को भी क्षमा करें और दूसरों की प्रार्थना भी स्वीकृत करें॥

प्रार्थना सुनाने और स्वीकृत कराने की एक और शर्त है, प्रार्थना करने में अध्यवसाय। यदि हम भक्ति दृढ़ और अनुभव पक्के करना चाहते हैं तो हमें "प्रार्थना में लगे रहना" आवश्यक है। हमें कहा गया हे, "प्रार्थना में लगे रहो और धन्यवाद के साथ उस में जागते रहो।" रोमी १२;१२; कुलुस्सी ४:२। पितर विश्वासियों की यह कह कर उत्साह देता है, "संयमी हो कर प्रार्थना के लिए सचित रहो।" १ पितर ४:७। पावल आदेश देता है, "हर एक बात में तुम्हारे निवेदन

धन्यवाद के साथ प्रार्थना और विनती के द्‌वारा परमेश्वर सामने जनाए जाएँ।” फिलिप्पी ४:६। बहुदाने कहा है, “है प्यारो, पवित्र आत्मा में प्रार्थना करते हुए, अपने आप को परमेश्वर के प्रेम में बनाए रखो।” यहूदा २०,२१। अखंड प्रार्थना आत्मा और ईश्वर को अटूट संबंध में जोड़ देती है और तभी ईश्वर से अनन्त जीवन का स्त्रोत हमारे जीवन में प्रसारित होता है और हमारे जीवन से पवित्रता तथा शुद्‌ध भावनाएँ ईश्वर के पास प्रवाहित होती है॥

प्रार्थना में अध्यवमय, धैर्य और निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है। ऐसा दृढ़ जाइये की कोई भी वस्तु आप को प्रार्थना में बाधा न पहुंचा सके। यही चेष्टा

कीजिये की आप के और यीशु की बीच का समागम बराबर बना रहे। इस मौके की ताक में सदा लगे रहिये की जहाँ प्रार्थना होती रहे वहाँ उपस्थित हो सकें। जो कोई भी सचमुच ईश्वर का अन्वेंषण कर रहे हैं। वे प्रार्थना मभावों में सदा सम्मिलित होते हुए कर्तव्य में एकनिष्ट और प्रार्थना से जितना भी लाभ उठा सकें उस में पुरे उद्दोगी और प्रयत्नशील देखे जावेंगे। जहाँ में भी स्वर्गीय प्रकाश की एक रशीद मिलने की आशा होगी वहीँ उपस्थित होने के स्वर्ग अवसर को वे प्राणपन से उपभोग करेंगे और पूरी तत्परता से वहाँ उपस्थित होंगे॥

हमें अपने परिवार में प्रार्थना करनी चाहिए, और गुप्त (मानसिक) प्रार्थना

भूलनी नहीं चाहिए क्योंकि यही आत्मा को जीवन देती है। बिना प्रार्थना के वृद्धि पाना असंभव है। और केवल परिवार के साथ अथवा जन-समाज के साथ प्रार्थना करने से ही पूरा लाभ नहीं हो सकता। जब आप अकेले हैं तो अपनी आत्मा को ईश्वर की निरिक्षण के लिए खोल दीजिये। गुप्त प्रार्थना केवल ईश्वर द्वारा ही सुनी जाती है। ऐसी प्रार्थना किसी जिज्ञासु के काम में नहीं पहुँच पाती। गुप्त प्रार्थना में आत्मा चतुर्दिक के प्रभाव से उद्द्वेश और आवेश से मुक्त रहती है। ऐसी अवस्था में ही वह धीरे धीरे और पूरी लगन से ईश्वर के समीप पहुंचेगी। ईश्वर ह्रदय की फूटती वाणी सुन लेगा, गुप्त आकांक्षाएं देख लेगा और उसके कोमल स्पर्श से मधु

रेषा और प्रकाश ह्रदय में भर जावेगा। गुप्त प्रार्थना में गंभीर, शांत और सरल विश्वास द्वारा आत्मा ईश्वर का समागम करती है और अपने चतुर्दीय ईश्वरीय विमा एकत्र करती है ताकि शैतान से द्वंद्व करने में वह समर्थ हो सके। ईश्वर ही हमारी शक्तियों का गढ़ है॥

अपनी व्यक्तिगत कोठरी में प्रार्थना कीजिये। जब अपने दैनिक कार्य में संलग्न हो तब अपने ह्रदय को खोज कर ईश्वर का ध्यान कीजिये। इसी रीती से हनुक ईश्वर के साथ साथ चलता था। गुप्त प्रार्थनाएँ ईश्वर के सिंहासन के पास सुगंधित धुप की तरह ऊपर उठती है। जिसका ह्रदय परमेश्वर पर स्थिर

रहता है उसे शैतान कभी हरा नहीं सकता॥

कोई भी स्थान ऐसा नहीं, कोई भी समय ऐसा नहीं जहाँ और जब ईश्वर से प्रार्थना द्वारा इश्वारंमुख करने से रोके। जन सकुल पथों में, व्यापार अथवा व्यवसाय की भीड़ में भी ईश्वर के पास अर्जी भेजने का उचित समय और स्थान है। नहेमिया ने राजा अर्तक्षत्र के पास निवेदन करते हुए भी ईश्वर से प्रार्थना की थीं। हम भी ईश्वर की शक्ति और सहाय्य प्राप्त करने को हर समय प्रार्थना में प्रवृत्त हो सकते हैं। और जहाँ भी रहेंगे, उन से समागम संभव ही होगा। ह्रदय के द्वार हमें सदा उन्मुक्त रखना चाहिए और सर्वदा आमंत्रण प्रेषित करना चाहिए

ताकि यीशु ह्रदय सिंहासन पर आ विराजें और स्वर्गीय अतिथि की तरह रहें॥

हमारे चतुर्दिक का वातावरण दूषित और घृणित हो सकता है। वैसी अवस्था में हमें दूषित वायु में सांस न लेना चाहिए किंतु स्वर्गीय प्राणप्रद वायु में जीवित रहना चाहिए। सच्ची प्रार्थना के द्‌वारा हम दूषित कल्पना और अपवित्र भावनाओं का पूर्ण बहिष्कार कर सकते है। जिन्हों ने अपने ह्रदय को ईश्वरीय आशीष और सहायता पाने के लिए खोल दिया वे पृथिवी के वातावरण से कही पवित्र वातावरण में जीवन यापन करेंगे और स्वर्ग के साथ नित्य संबंध में जुटे रहेंगे।

हमें यीशु को और भी स्पष्ट रूप में देखना और शाश्वत सत्य के मूल्य को उचित रीती से समझना चाहिए। पवित्रता में विशेषता यह है की वह ईश्वर के पुत्रों के ह्रदय पूरी तरह से पूर्ण कर देता है। अपने ह्रदय की पूर्णता के लिए हमें ईश्वरीय प्रकाश और स्वर्गीय वस्तुओं को पूरी तरह जानने की चेष्टा करनी चाहिये॥

आत्मा को उर्ध्वमुखी कीजिये ताकि ईश्वर स्वर्गीय वायु का एक झोंका प्रदान कर सकें। हमें ईश्वर के इतने समीप रहना चाहिये की प्रत्येक अप्रत्याशित कष्ट के समय हमारा मन अनायास घूम कर उनकी ओर केन्द्रित हो जाय, ठीक जैसे फूल सूरज की ओर घूम जाता है॥

अपनी जरूरते, सुख, दू:ख, चिंताएँ और भय सभी को ईश्वर के सामने खोल कर रख देना चाहिये। यह मत समझिये की आप उन पर बोझ लाद रहे हैं, अथवा परीशान कर रहे है। वे बोझ से उबते नहीं, परिशानी से थकते नहीं। जो आप के माथे के केश गिन ले सकता है वह अपने बच्चो की जरूरतों से घबराएगा? “प्रभु बहुत तरस खाता हैं और दया करता है।” याकूब ५:११। उनका प्रेममय ह्रदय हमारे दू:ख से पिघल पड़ता है और हमारे कहने मात्र से द्रवित होता है। जिस चीज से भी आप घबरा उठे, उसे उनके पास ले जाईये। उनके सामने कोई भी चीज बहुत बड़ी अथवा भरी नहीं। वे गृह मंडल और सारे विश्व को संभाले हैं।

उनके सामने कौनसी चीज भरी होगी? हमें अशांत करनेवाली कोई भी वस्तु उनके लिए छोटी नहीं। हमारे जीवन के काले अध्यायों में कोई भी इतना कालिमा पूर्ण नहीं जिसे वे नहीं पढ़ सकते। हमारी गंभीर से गंभीर उलझन उनके लिए आसान है। कोई ऐसी विपत्ति हम पर नहीं आ सकती, कोई ऐसी चिंता हमारी आत्मा की जंजोरित नहीं कर सकती, कोई हर्ष हमें खुश नहीं कर सकता, कोई प्रार्थना ऐसी नहीं हो सकती, जिसे हमारे परमेश्वर नहीं जानते और जिस में वे तुरंत हाथ नहीं बटाते, अथवा रुची नहीं दिखाते। “वह खेदित मनवालों को चंगा करता और उनके शोक पर पट्‌टी बंधता है।” भजन संहिता १४७:३। ईश्वर के साथ प्रत्येक

प्राणी का संबंध ऐसा गहरा है की जैसे प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा के लिए ही उन्होंने अपने प्रिय पुत्र को सौंपा; अन्य प्राणी मानों है ही नहीं॥

यीशु ने कहा है, “तुम मेरे नाम से मांगोगे और मैं तुमसे यह नहीं कह सकता की मैं तुम्हारे लिए पिता से बिनती करूंगा। क्योंकि पिता तो आप है तुम से प्रीति रखना है।” “मैंने तुम्हे चुना….की तुम मेरे नाम से जो कुछ पिता से मांगो वह तुम्हे दे।” योहन १६:२६; १५:१६। लेकिन यह ध्यान रहे की यीशु के नाम से प्रार्थना करनी एक बात है और प्रार्थना के शुरू और आखिर में यीशु का नाम लेना दूसरी बात है। यीशु के नाम से प्रार्थना करना बहुत बड़ी चीज है। क्योंकि ऐसी प्रार्थना

यीशु के मन और प्रभा से निकलेगी और जब तक उनकी प्रतिज्ञाओं पर विश्वास है तथा जब तक उनके कार्य में दत्तचित्त है तब तक हमारी उनके नाम की प्रार्थनाएँ उनकी ही प्रार्थनाएँ रहेगी॥

ईश्वर यह नहीं चाहता है हम में से कोई साधू या फकीर हो जाय दुनिया छोड़ दे और मंगल में जाकर तपस्या और पूजा करे। जीवन यीशु के जीवन के अनुरूप होना जरुरी है। पर्वत और जनसमुदाय के बीच पीसनेवाला जीवन यीशु का था, वैसा ही जीवन हम लोगों का हो। जो कुछ नहीं करता केवल प्रार्थना में लगा रहता है, वह शीघ्र ही प्रार्थना करना बंद कर देगा। उसकी प्रार्थना दिनचर्या की तरह थाथी रह जायगी। जब आदमी

सामाजिक जीवन से अलग आ पड़ते हैं, ईसाई के कर्तव्य से बन्नी कटा कर दूर जा पड़ते है, जब वे अपने प्रभु के लिए, जिन्होंने उनके निमित्त कठिन परिश्रम किया, कोई काम नहीं करते, तब उनकी प्रार्थना में कोई तथ्य नहीं रहता और उनकी भक्ति में कोई प्रेराकशक्ति और श्रद्धा नहीं रहती। ऐसे आदमी की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण और वैयक्तिक हो जाती है। ऐसे आदमी मानव-कल्याण के लिए प्रार्थना नहीं कर सकते, यीशु के साम्राज्य के उत्थान के लिए प्रार्थना नहीं कर सकते, मनुष्यों के दू:ख निवारण और उद्धार के लिए अपने में सामर्थ्य की याचना नहीं कर सकते॥

जब हम परमेश्वर की सेवा में एक दुसरे को उत्साहित और बलवंत करने के स्वर्ण अवसर को ठुकरा देते है तब हमें हानि उठानी पड़ती है। हमारे मन से उसके वचन की सच्चाई की स्पष्टता हट जाती है। हमारा ज्ञान कम हो जाता ही, हमारे हृदय पर उसके पवित्र करनेवाली शक्ति का प्रभाव घट जाता है और हम आत्मिक जीवन में शिथिल होते जाते हैं। एक दुसरे के प्रति सहानुभूति न दिखलाने के कारण हम ख्रिष्टिवानी संगती की विशेषता को खो बैठते हैं। जो अपने को दूसरों की पहुँच से बाहर रखता है वह ईश्वर के ठहराये हुए कर्तव्य को पूरा नहीं करता है। सामाजिक प्रवृत्तियों का होना मनुष्य के चरित्र में आवश्यक है। यही हमें दूसरों के साथ सहानुभूति

और प्रेम के बंधन में बांधती हैं। और इस मेल-मिलाप से ही हमारे अंदर ताकत और जोश ईश्वर की सेवा में प्रवृत्त होने के लिए आते है॥

यदि ईसाई लोग दूसरों से मिले और ईश्वर के प्रेम की चर्चा करें, तथा बहुमूल्य सत्य और मुक्ति का विचार-विनिमय करें, तो उनका ह्रदय शुद्ध होंगा और दुसरे का ह्रदय भी निर्मल होगा। संभाषण द्वारा हम नित्य स्वर्गीय पिता के बारे नये ज्ञान प्राप्त करेंगे। फिर उसके प्रेम का वर्णन करेंगे। और वह सब करते करते हमारा ह्रदय सरगम और उत्साहित होता जायेगा। यदि हमने यीशु के बारे अधिक और स्वार्थ के विषय में कम विचार और बातें

की है, तो यह निश्चय जानिये, हम इनकी उपस्थिति अधिक प्राप्त करेंगे॥

जब जब हम वह प्रमाण पा लें की ईश्वर हमारी फिक्र करता है, यदि तब भी ईश्वर का ध्यान लगावें हमें सदा उसे अपने ह्रदय में रखना होगा, उसका ध्यान करना होगा और उनके बारे संभाषण तथा प्रशंसा में प्रवृत्त होगा पड़ेगा। हम सांसारिक वस्तुओं के विषय में अधिक बातें करते है क्योंकि इन वस्तुओं से हमारा मतलब है। हम अपने मित्रों के विषय में बातें करते क्योंकि हम उन्हें प्यार करते है, हमारे आनंद और शोक उनसे मिले हुए है। फिर भी मित्र से ईश्वर को प्यार करने के कुछ बड़े कारण है। संसार की सब से स्वाभाविक चीज तो

यह होनी चाहिये की मस्तिष्क में सबसे पहले ईश्वर के विचार ही उठे, उन्ही की प्रशंसा की जाय और उनकी नम्रता और कल्याणकारी शक्तियों का संभाषण किया जाय। दुनिया की सुंदर और मोहक वस्तुओं का जो बहुमूल्य उपहार हम लोगों को मिला वह इस लिए नहीं मिला की हमारा सारा ध्यान और प्रेम उन्हों में लग जाय और ईश्वर के लिए ह्रदय में कुछ भी स्थान न हो, प्रेम न हो। इसके उलटे हमें इन उपहारों से सदा स्वर्गीय पिता को प्रवृत्त होने का संकेत पाना चाहिये और उन्ही उपहारों के द्वारा प्रेरणा पा अपने स्वर्गस्थ परमपिता की उदारता और दान की भूरी भूरी प्रशंसा करनी चाहिये, तभी हमारी कृतज्ञता प्रगट होगी। यदि हम ऐसा नहीं करते तो

निश्चय ही हम दुनिया की सब से नीची तराई के गड्ढे के समीप वास करते है। हमें उस पवित्रस्थान की और आँखें उठा कर देखना चाहिये। जिनके द्वार खुले है और जहाँ से ईश्वर की महिमा की धवल रश्मियाँ उस ख्रीष्ट के मुख की दीन कर रही है, “जिसके द्वारा परमेश्वर के पास आते है” और “वह उसका पूरा पूरा उद्धार कर सकता है।” इब्रो ७:२४॥

“परमेश्वर की करुणा के कारण और उनकी आश्चर्यकर्मों के कारण जो वह मनुष्यों के लिए करता है,” हमें उसकी हार्दिक प्रशंसा करनी चाहिये। हमारी प्रार्थना में केवल यंत्रनाएं ही भरी न हों। यह तो अच्छा नहीं की हम प्रतिदिन अपनी आवश्यकताओं की उधेड़बुन में ही

पड़ें रहे और जो विपुल पुरस्कार हमें मिल चूका है उस की कुछ चिंताही न करें। हम प्रार्थना भी उतनी अधिक नहीं करते, लेकिन उससे भी कम अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं। समझिये की कृतज्ञता और धन्यवाद के शब्द तो हमारे ह्रदय से निकलते ही नहीं। सदा तो उनके उपकारों से हम लदे जा रहे हैं, सदा क्षमा के वरदान पा रहे हैं, फिर भी हम कितने नीच हैं की कृतज्ञता के भाव प्रगट नहीं करते। हमारे लिए उसने जो कुछ किया, इसके लिए हम उसकी प्रशंसा तक नहीं करते॥

पुराने समय में जब इस्त्राइल ईश्वर की सेवा के लिए एकत्रित हुए, तो ईश्वर ने कहा, “तुम अपने परमेश्वर यहोवा के

सामने भोजन करना और अपने अपने घराने समेत उन सब कामों पर जिनमें तुमने हाथ लगाया हो और जिन पर तुम्हारे परमेश्वर यहोवा की आशीष मिली हो आनंद करना।” व्यवस्था विवरण १२:७। ईश्वर की महिमा के लिए जो कुछ भी आप करें, प्रफुल्लित हो कर करें, प्रशंसा के मधुर गीत और कृतज्ञता के संगीत के साथ करें, न की उदासी और दू:ख के साथ॥

हमारे ईश्वर महत्वपूर्ण और दयालु पिता हैं। उनकी सेवा उदासी और दू:ख का कारण होना चाहिये। उनकी पूजा और सेवा में तो उल्लास के साथ प्रवृत्त होना चाहिये। ईश्वर ने अपने पुत्रों के लिए मुक्ति और आनंद के इतना बहुमूल्य

उपहार दिया, तो वह कैसे उनसे क्रूरता के साथ काम ले सकता है? वह तो उनका सर्वश्रेष्ठ मित्र है। और जब वे उसकी पूजा करते हैं तो वह सदा उनके साथ रहता है, उन्हें सांत्वना और आशीर्वाद देता है, और उनके हृदय में उल्लास और प्रेम भर देता है। ईश्वर यह चाहता है की उसकी संतान उसकी सेवा करने में चैन प्राप्त करे, और उसके कार्यों के संपादन में आनंद, न की दू:ख प्रकट करे। वह यह भी चाहता है की जो कोई भी उसकी सेवा करे, वह ईश्वरीय प्रेम और ममता के बहुमूल्य वरदान पा कर जाय। इन वरदानों को पा कर वह अपने दैनिक जीवन के सभी कर्तव्यों में प्रसन्न मन रहेगा और पूरी ईमानदारी तथा लगन से सारा कर्तव्य सम्पादित करेगा॥

हमें क्रूस के चारो ओर जुट जाना आवश्यक है। ख्रीष्ट और उसकी क्रूस ही हमारी एकनिष्ट चिंतन के विषय होने चाहिये; इन्ही के विषय में संभाषण करें, और हमारे आनंद से भरे सारे उद्द्वत इन्हीं से प्रेरित हो जिन जिन चीजों को हमने ईश्वर से पाया है उन सर्वों को यद् रखना और सभी आशीर्वाद और उपहार के लिए उस परमेश्वर की कीर्ति और गुणों की प्रशंसा करना हमारा कर्तव्य है। तब हम उन्ही हाथों पर अपने सारे जीवन को अर्पित कर सकते है जिन हाथों पर हमारी ही मुक्ति के लिए कौल ठोंकी गई थी॥

ईश्वर की गुणगान और प्रशंसा के पंखों पर चढ़ मन स्वर्ग के एकदम निकट उड़ चलेगा। स्वर्गीय दरबार में ईश्वर की आराधना, गीत और बाह्य यंत्रो की मधुर ध्वनी के साथ होती है। “धन्यवाद के बलिदान का चढ़ानेहारा मेरी ईश्वर की महिमा करता है।” भजन संहिता ५०:२३। तब हमारा कृतज्ञता-ज्ञापन स्वर्गीय पूजा से कुछ कम न रहेगा। हमें चाहिये की “उसमे हर्ष और धन्यवाद और भजन” के साथ बड़ी भक्तिसहित उनके सम्मुख उपस्थित हुआ करें। यशायाह ५१:३॥

12 शंका को क्या करें

बहुत से लोग ईश्वर के बारे शंका करने लगते हैं और मुसीबतों में आ पड़ते है। ऐसी बात नये ईसाईयों के बीच ज्यादा देखी गयी है। बायबल में बहुत सी चीजे ऐसी हैं जिन्हें वे समझा नहीं सकते और समझ भी नहीं सकते। अब शैतान इन चीजों को ईश्वर के पवित्रशास्त्र को ईश्वरी-प्रकाशित समझेंगे ही नहीं। उस पर से हमारा विश्वास खिसकतासा जायेगा। ऐसी अवस्था में पड़े लोग पूछेंगे "हम किस प्रकार सत्य मार्ग को ढूंढ़ ले सकते है? यदि बायबल ईश्वर के वचन ही व्यक्त हुए है, उनकी वाणी ही फुट पड़ी है तो इन शंकाओं, संशयो और

द्विविधाओं से मैं कैसे मुक्त हो सकता हूँ?"

ईश्वर वह नहीं कहता की बगैर प्रमाण के हम किसी भी बात पर विश्वास कर लें। ईश्वर की स्थिति, उनका चरित्र, उनके वचन की सत्यता, सभी प्रमाण द्वारा सिद्ध, तर्कों द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। हजारो-लाखों प्रमाण पड़ें है। फिर भी ईश्वर ने शंका के लिए स्थान रखा, उसे पूर्णतः बहिष्कृत नहीं किया। हमारे विश्वास प्रमाण पर टिके रहें, बाहरी दिखावा पर नहीं। फिर भी जिन्हें शंका करने की इच्छा ही है, उनके लिए बहूत ज्यादा गुंजाइश है, वे खूब शंका करें। किंतु जो सचमुच सत्य के परिज्ञान की

चेष्टा कर रहे हैं, उन्हें अपने विश्वास के लिए काफी प्रमाण मिल जायेंगे॥

हम लोगों का मस्तिष्क ससीम है और ईश्वर स्वयं निस्सीम है, उसका चरित्र सीमा से परे है और कार्य असीम हैं। अतएव हमारे मस्तिष्क को न तो वही बोधगम्य हैं, न उसका चरित्र और न कार्य। कुशाग्र से कुशाघ्र बुद्धि के लिए भी, और सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित मस्तिष्क के लिए भी वह रहस्यमय ही रहेगा। “क्या तू ईश्वर का गुप्त भेद पा सकता और सर्वशक्तिमान का मर्म पूरी रीती से जांच सकता। आकाश सा ऊँचा तू क्या कर सकता अधोशोक से गहिरा तू वहां समझ सकता।” अय्यूब ११:७,८॥

पावल ने कहा है, “यहा परमेश्वर का धन और बुद्धि और ज्ञान क्या ही गंभीर है। उसके विचार कैसे अथाह और उसके मार्ग कैसे अगम हैं।” रोमी ११:३३। परन्तु यद्दपि “बादल और अन्धकार उसके चारों और हैं” तथापि “उसके सिंहासन का मूल धर्म और न्याय है।” भजन ६७:२। उसके हमारे प्रति व्यवहार और उद्देश में जो बात समझी जा सकती है वह यही की उसकी असीम शक्ति के साथ अगाध प्रेम और करुणा मिली हुई है। उसके प्रयोजन को हम इतना हो समझ सकते हैं की जिससे हमारा कल्याण हो सकें। इसके परे जो है उसके बारे हमें यह विश्वास करना चाहिये की उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर

का वरद हस्त और प्रेममय ह्रदय हम पर सदा आशीर्वाद की षर्षा करेंगे॥

जैसे ईश्वर का चरित्र बोधगम्य नहीं, उसी तरह ईश्वर की वचन भी बोधगम्य नहीं। ईश्वर की वाणी, ईश्वर के वचन अपने जन्मदाता परमेश्वर की ईश्वरीय प्रकृति की ही तरह ससीम मस्तिष्क द्वारा पूरी तरह समझे नहीं जा सकते। अतएव उनके रहस्यों का उद्घाटन सर्वत्र संभव नहीं। पृथिवी में पाप के प्रवेश, ख्रीष्ट का अवतार, पुनर्जीवन प्राप्ति, पुनरुत्थान, एवं अन्य विषय भी जिनका उल्लेख बायबल में हुआ हैं, ऐसे गंभीर रहस्य से आवृत्त विषय हैं जिन्हें समझाना अथवा समझ लेना मनुष्य के मस्तिष्क से परे की बात है। किंतु ईश्वर

के वचनों पर शंका करने का कोई कारण नहीं। यदि हम रहस्य सुलझाते नहीं, तो इसका अर्थ यह नहीं की उन पर हा संदेह करें। इसी वास्तविक जीवन में भी रहस्य सर्वत्र आ पड़ते है और उन्हें भी हम नहीं समझ पाते। साधारण से साधारण जीवन में भी ऐसी उलझने हैं जिन्हें बुद्धिमान से बुद्धिमान दार्शनिक भी सुलझा नहीं पाते। चारों और आश्चर्य भरे ही हुए हैं। और उन पर दृष्टि डाल हम विस्मय विमुग्ध हों जाते हैं। फिर यदि आध्यात्मिक जगत में गहरे रहस्य मिले और उन्हें हम सुलझा न सकें तो हमें क्या आश्चर्य में डूब जाना चाहिये? असल मुसीबत तो यह है की मानव मस्तिष्क बहूत दुर्बल और संकीर्ण है। धर्मशास्त्र में ईश्वर ने उन प्रन्धों की

प्रमाणिकता के बारे काफी सबुतें दी है। अतएव यदि उनके रहस्य हमें समझ में न आवें तो उसके वचन पर संदेह और शंका करना उचित नहीं॥

पतरस ने कहा है की धर्मशास्त्र में “कितनी बातें ऐसी हैं जिनका समझना कठिन है और अनपढ़ और चंचल लोग उनके मतलब को भी पवित्रशास्त्र की और बातों की नाई खींचतान कर अपने ही नाश का कारण बनाते हैं।” पतरस ३:१६। शास्त्र में जो कठिन अंश हैं उन्हें अविश्वासी लोग दिखा दिखा कर अपने ईश्वर के प्रति अविश्वास और बायबल के प्रति शंका के तर्क मजबूत करते हैं। किंतु सच पूछिये तो वे अपने नास्तिक तर्कों से बायबल की सच्चाई और ईश्वर की

स्थिति की सत्यता ही घोषित करते हैं। यदि उसमें ईश्वर का और कोई वर्णन नहीं रहता केवल वैसा ही वृतांत रहता जिसे हम अच्छी तरह सुगमता से समझ लेते, यदि उसकी अनंत विशालता हमारे शुद्ध ससीम मस्तिष्क द्वारा समझी जा सकती तो बायबल में ईश्वरीय अधिकार का स्पष्ट प्रमाण नहीं पाते। जिन विषयों का उल्लेख बायबल में हुआ है, उनकी भव्यता और रहस्य ही ऐसी विशेषता है जो सारे बायबल को ईश्वर का वचन कह कर विश्वास दिलाती है॥

बायबल में वर्णित सत्य ऐसी सरल और सीधी भाषा में, ऐसे सुगम तौर पर व्यक्त किये गए हैं और मनुष्य हृदय की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के

अनुरूप उन्हें ऐसी पूर्णता के साथ ढाल दिया गया है की सुसंस्कृत मस्तिष्क भी उसकी इस विशेषता पर मुग्ध एवं आश्चर्यित हो उठा है और साथ साथ सरल मनुष्यों की तो वह मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करता ही है। इन सरल और सुगम तरीके से व्यक्त सत्य उन गूढ़ और उच्च विषयों का प्रतिपादन करते हैं, उन दुर्गम और दूरस्थ वस्तुओं का विश्लेषण करते हैं, उन मानव मस्तिष्क द्‌वारा अगम्य-अगोचर रहस्यों का उद्‌घाटन करते हैं, जो हमें इसी कारण वश ग्राह्य हैं क्योंकि ईश्वर ने उनका वर्णन किया है। इस तरह से मुक्ति का उपाय हमारे सामने खुला पड़ा है, जिससे प्रत्येक प्राणी यह देख सके की पश्चाताप का कौनसा कदम उन्हें ईश्वर की और ले

जायेगा और कौनसा कदम यीशु के प्रति विश्वास और भक्ति की और प्रवृत्त करायेगा, ताकि ईश्वरीय नियुक्त उपाय द्वारा सभी प्राणियों का उद्धार हो। फिर भी इन सरल सत्यों के निचे कुछ ऐसे रहस्य छिपे हैं, जिनके छिपे रहने पर ही ईश्वर की भव्यता और अनंतता सिद्ध होती है। ये रहस्य ऐसे गूढ़ है की सुलझाने में मस्तिष्क चक्कर खा जाते हैं, किंतु सत्य के सच्चे अन्वेषकों के हृदय में ये भक्ति और श्रद्धा भर देते हैं। ऐसे लोग जितना अन्वेषण करते हुए बायबल पढ़ते और उसका मनन करते हैं, उतना ही उनका वह विश्वास दृढ़ होता है की यह चेतन ईश्वर की कृति है; फिर तो मानव मस्तिष्क अपने सारे तर्कों वितरकों के साथ उस ईश्वरीय

प्रकाश की भव्यता के सम्मुख
नत-मस्तक होता है॥

यदि हम यह स्वीकार कर ले की बायबल के गुरु गंभीर सत्य को पूरी तरह हम नहीं समझ सकते, तो हम यह भी स्वीकार कर लेते हैं की सिमित मस्तिष्क असीम मस्तिष्क को समझ नहीं सकता और मनुष्य अपनी संकीर्ण और दुर्बल बुद्धि से सर्वशक्तिमान को समझ नहीं सकता॥

ईश्वर के वचन में जो रहस्य हैं उन्हें जब सुलझा नहीं सकते तो संशयात्मा और नास्तिक ईश्वर के वचन को अस्वीकार कर देते हैं। इस स्थान पर बायबल पर विश्वास रखनेवाला लोगों में अधिकाँश

पिछड़ने के खतरे पर रहते हैं। प्रेरित ने कहा है, “हे भाईयों चौकस रहो की तुम में ऐसा बुरा और अविश्वासी मन न हो जो जीवित परमेश्वर से हट जाए।” इब्रो ३:१२। बायबल के उपदेशों का मनन गूढ़ रूप से करना चाहिये और “परमेश्वर की गूढ़ बातों” का जहाँ तक वर्णन हुआ हो उन्हें ढूंढ़ लेना चाहिये। “गुप्त बातें हमारे परमेश्वर यहोवा के वश में हैं पर जो प्रगट की गई हैं सो सदा लों हमारें वश में रहेगी।” व्यवस्था विवरण २६:२६। किंतु शैतान का काम हमारे मस्तिष्क की अन्वेषण शक्ति को बुरे मार्ग में प्रेरित कर देना है। बायबल के सत्यों को ढूंढ़ निकालने में एक प्रकार के अहंकार का अनुभव होता है अतएव जब उस धर्मशास्त्र का प्रत्येक अंश पूरी तरह

समझ न लिया जाय और हर भाग की संतोषजनक व्याख्या न हो ले तो मनुष्य को ऐसा लगता है जैसे वह हार गया है। इस लिए वह घबरा उढ़ता है। उसके लिए उन शब्दों को न समझना बड़ी भारी शर्म की बात है। ऐसे लोग उस अवसर तक धीरता के साथ ठहरे रहना नापसंद करते हैं जिस अवसर पर ईश्वर उन्हें ऐसी सुबुद्धि देगा की जिससे सारे रहस्यों को वे समझ सकें। ऐसे लोग समझते हैं की उनका मानुषिक ज्ञान धर्मशास्त्र समझने की काफी ताकत रखता है, और जब धर्मशास्त्र समझ में नहीं आता तो वे धर्मशास्त्र के ईश्वरीय अधिकार को इनकार करते हैं। लेकिन यह ठीक है की बायबल की शिक्षाओं से बिलकुल अलग और उसकी अनुभूतियों से सर्वथा भिन्न

बहुत से सिद्धांत और मान्यतायें चल पड़ी है और लोग इन सिद्धांतों और मान्यताओं को बायबल से निकले हुए समझते हैं। किंतु ये वास्तव में वैसे नहीं। इन्हीं को देख कर अधिक लोग शंका और उलझन में पड़ जाते हैं। ये ईश्वर के वचन से नहीं है किंतु मनुष्य के किये हुए भ्रष्ट रूप हैं॥

यदि प्राणी को इतनी शक्ति रहती की वे ईश्वर और उसके कार्यों को पूरी तरह समझ सकते, तो उतनी शक्ति के आ जाने पर उनके लिए कोई सत्य का अनुसंधान न रहता, विद्या का कोई विकास न होता, मस्तिष्क का कोई विकास न होता, ईश्वर तब सर्वों सर्वा नहीं रहता, मनुष्य अपनी शक्ति में

विकासित हो ज्ञान प्रतिभा आदि में पूर्णता प्राप्त कर आगे बढ़ नहीं सकता। किंतु बात ऐसी नहीं और उसके लिए हम ईश्वर को धन्यवाद दें। केवल ईश्वर ही निस्सीम है, उसी में "बुद्धि और ज्ञान के सारे भंडार छिपे हैं।" कुलुस्सी २:३ और अनंतकाल तक मनुष्य अन्वेषण में लगा रहे, खोज करता चले, ज्ञानवृद्धि करता चले, किंतु ईश्वर के ज्ञान, विवेक, मंगलमयी शक्तियों और पराक्रम का अंत न पा सके॥

ईश्वर की इच्छा वह है की इस जीवन में भी उसके वचन की सत्यता लोगों को अनुभव हो। इस अनुभव ज्ञान के लिए एक ही रास्ता है। ईश्वर के वचन के अनुभव-ज्ञान के लिए हमें अपने अंदर

उसी पवित्रता और विभूति की ज्योति लानी होगी जिस के द्वारा वचन दिया गया था। “परमेश्वर की बातें कोई नहीं जानता केवल परमेश्वर का आत्मा।” “क्योंकि आत्मा सब बातें एवं परमेश्वर की गूढ़ बाते भी जानता है।” १ कुरिन्थ २:११,१०। और अपने अनुगामियों को मुक्तिदाता ने यह प्रतिज्ञा की थी, “पर जब वह अर्थात सत्य का आत्मा आयेगा तो तुम्हे सारे सत्य का मार्ग बताएगा। .....क्योंकि वह मेरी बातों में से ले कर तुम्हे बतायेगा।” योहन १६:१३,१४॥

ईश्वर यह चाहता है की मनुष्य अपनी तर्कशक्ति का उपयोग करे। बायबल का पठन मनन ही मस्तिष्क को शक्ति संपन्न एवं उन्नत कर सकता है, अन्य

प्रकार के पठन नहीं। फिर भी हमें तर्कशक्ति को ईश्वर समझने से सावधान होना चाहिये क्योंकि यह तो मानुषिक दुर्बलताओं के अधीन हैं। यदि हमें धर्मशास्त्र में सर्वत्र अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़े और छोटे से सरल सत्य के समझने में भी मुश्किल हो, तो हमें बच्चों की सरलता और विश्वास रखना चाहिये और सिखने, समझने और विश्वास कर लेने में सदा तत्पर रहना और पवित्र आत्मा की शरण लेनी चाहिये। ईश्वर की शक्ति और विवेक से तथा उसकी विशालता से अभिभूत हो कर हम में दीनता, विनम्रता और सरलता के भाव भर जाने चाहिये। जिस प्रकार विस्मय और आश्चर्य में डूबे हुए हम उनके समक्ष जायेंगे उसी प्रकार

पवित्र विस्मय और आश्चर्य से अभिभूत हमें उसकी पुस्तक खोलनी चाहिये। जब भी हम बायबल को उठाये तभी हमारी तर्क-शक्ति की यह कर लेना चाहिये की इसके तर्क हमारी शक्ति के परे हैं और हमारे ह्रदय तथा बुद्धि को उस महान "मैं हूँ" के सम्मुख झुक जाना चाहिये॥

जो इस प्रकार की विशुद्ध भावना लेकर सभी बातें हृदयंगम करने के लिये बायबल खोलेंगे उन्हें ईश्वर बायबल के कठिन और पेचीदे भाग अच्छी तरह बोध कर देगा। किंतु पवित्र आत्मा के सहाय्य बिना हम उसके अंशों की खींचातानी कर लेंगे अथवा अर्थ का अनर्थ कर देंगे। बायबल का पाठ इस प्रकार करने से लाभ तो होता नहीं हैं हानि अवश्य होती

है। जब ईश्वर का वचन बिना श्रद्धा और बिना प्रार्थना के खोला जायेगा, और जब विचार तथा अनुराग ईश्वर पर केन्द्रित नहीं, उसके अनुरूप नहीं, तब मस्तिष्क में शंकाओं और संशयों के बादल छा जाते हैं तथा बायबल के पाठ से ही ईश्वर की स्थिति पर अविश्वास की भीती मजबूत होती है। ऐसी अवस्था में उसके पाठ करने से मनुष्य का चिर-शत्रु शैतान पाठक के विचारों पर काबू कर लेता है और वह गलत अर्थ लगाने को प्रेरित करता है। जब जब मनुष्य मन और वचन और कर्म से ईश्वर के अनुरूप नहीं, तब तब वे धर्मशास्त्र समझने में गलती करेंगे और चाहे कितने भी भारी पंडित क्यों न हों, अशुद्ध व्याख्या करेंगे। उन पर विश्वास करना अवंगत है। दूसरी

बात वह है की जो भी धर्मशास्त्र का पाठ इस लिये करता है की उस से अशुद्धियों और दोषों के निकालें, वह आत्मिक चक्षुयों से विहित है। ऐसे लोग अपनी भ्रष्ट आखों से स्पष्ट और सरल तथ्यों को भी गलत और भ्रामक देखेंगे और अपने निर्मूल शंकाओं को दृढ़ कर ईश्वर पर अविश्वास प्रगट करेंगे॥

चाहे आप कितना भी छिपायें, रूप बदलें, और वेश परिवर्तन कर लें, किंतु शंकाओं और नास्तिक-भावनाओं के मूल में पाप के और आसक्ति है। अहंकार में डूबे और पाप तथा आसक्तियों में रत हृदयों को ईश्वर के वचन में उपदेश और अनुशासन तथा नियंत्रण के जो बंधन हैं, मान्य नहीं। अब जिन्हें वे बंधन मान्य

नहीं, जिन्हें आदेश और आज्ञाएँ पालन ही नहीं करनी, वे बायबल को अस्वीकार न करें तो क्या करें? सत्य प्राप्त कने के लिये तो यह आवश्यक है की सत्य के ज्ञान के लिये हम में सच्ची इच्छा हो, और उसे पालन करने के लिये ह्रदय में सच्ची लालसा हो। ऐसी भावना से जो भी बायबल पढ़ते है, उन्हें इस बात का प्रचुर प्रमाण मिल जाता है की यह ईश्वर का वचन ही है। ऐसे लोग उस में प्रतिपादित सत्य का मनन एवं अनुशीलन कर इतने उन्नत हो जायेंगे की मुक्ति के निमित्त ज्ञानवान होंगे॥

यीशु ने कहा है, “यदि कोई उसकी इच्छा पर चलाना चाहे तो इस उपदेश की विषय जान जायेगा।” योहन ७:१७। जिसे

आप समझ नहीं सकते उस पर टिका-टिपण्णी और शंका करने के स्थान पर यदि आप सरल सत्यों को हृदयंगम कर लें और जो प्रकाश आप पर पहले से ही ज्योति विखेर रहा है, उसे ही ग्रहण कर लें तो निश्चय ही भविष्य में और भी अधिक प्रकाश आप को प्राप्त होगा। आप ने जिन कर्तव्यों को यीशु की अनुग्रह से सरल समझ कर हृदयंगम कर लिया है, पहले उन्हें ही पूरा कीजिये। थोड़े दिनों में वे कर्तव्य भी स्पष्ट हो उठेंगे जिन के बारे आप के ह्रदय में अभी शंकाये उठ रही हैं॥

एक प्रमाण सर्वों के लिए बोधगम्य है, चाहे वे सुशिक्षित हों अथवा निरक्षर हों, और वह है अनुभूति का प्रमाण। ईश्वर

तो हमें बुला बुला कर यह कहता है की आप स्वयं मेरी वाणी की सत्यता और मेरी प्रतिज्ञाओं की दृढ़ता जाँच लीजिये। वे कहते है की आप “परख कर देखो की यहोवा कैसा भला है।” भवन ३४:८। दूसरों की बात पर भरोसा करने से तो अच्छा है की हम खुद जाँच लें। उसकी घोषणा तो है, “मांगो तो दिया जायेगा।” योहान १६:२४। उसकी प्रतिज्ञाएँ निश्चय पूरी होंगी। वे कभी निरर्थक नहीं हुई हैं, वे कभी झूठी नहीं होंगी। जब हम यीशु के निकट खिंच आते हैं और उनके अपार प्रेम पा हर्षोल्लास में मस्त हो जाते हैं, तो उनकी उपस्थिति को चकाचौंध में सारी शंकाओं और संदेहों की कालिमा विलीन हो जाती है॥

प्रेरित पावल ने ईश्वर के बारे कहा है, “वही हमें अंधकार के वश से छुड़ा कर अपने उस प्रिय पुत्र के राज्य में लाया।” कुलुस्सी १:१३। और जिस जिस को मृत्यु के पंजे से छुड़ा कर अमर जीवन के साम्राज्य में लाया गया है, उसको दृढ़ रूप से यह कहना चाहिये की “परमेश्वर सच्चा है।” योहन ३:३३॥ वही घोषित कर सकता है की “हम ने सहायता की आवश्यकता दिखाई, और हम ने यीशु में सहाय्य प्राप्त किया। प्रत्येक मांग पूरी हुयी, मेरी आत्मा की चुक्षा शांत हुई। और बायबल अब मेरे लिए यीशु की वाणी है। अब क्या आप पूछते है की मैं क्यों विश्वास करता हूँ? मैं उन में विश्वास करता हूँ क्योंकि वे मेरे लिए स्वर्गीय मुक्तिदाता हैं। आप जानना

चाहते हैं की मेरी बायबल पर क्यों श्रद्धा है? इस का कारण यह है की हम ने आत्मा के लिये इसे ईश्वर की अमृतमयी वाणी पाया।” उसी तरह हम भी स्वयं चाहें तो बायबल की सत्यता और यीशु के ईश्वर पुत्र होने की साक्षी अपने अंतर में पा लें। क्योंकि हम जानते है की हम गढ़ी हुई कहानियों का अनुसरण नहीं करते॥ पतरस ने भाइयों को आदेश दिया था की “हमारे प्रभु और उद्धारकर्ता यीशु मसीह के अनुग्रह और पहचान में बढ़ते जाओ”। २ पतरस ३:१८। जब ईश्वर के मनुष्य अनुग्रह में पढ़ते जायेंगे तो वे निरंतर उसके वचन के शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करते जायेंगे। फिर वे सत्य में अधिक ज्योति और पवित्रता अनुभव करेंगे। यह बात युग युग से मगडली के इतिहास में

सच होती आ रही है और अंत काल तक सच होती जाएगी। “पर धर्मियों की चाह उस चमकती हुई ज्योति के समान है जिस का प्रकाश दोपहर को अधिक अधिक बढ़ता रहता है।” नीतिवचन ४:१८॥

विश्वास के द्‌वारा हम भविष्य की आशा रखें और बुद्‌धि के विकास के लिये ईश्वर की प्रतिज्ञाओं को थामे रहें। हमारा मानव मस्तिष्क ईश्वरीय मस्तिष्क से संयोजित हो और आत्मा की सारी शक्तियाँ उस आलोकमय ज्योति से जगमगा उठे। तभी हम इस लिये आनंदित होंगे की ईश्वरीय प्रबंध में जो उलझने थीं सो सुलझ जायेंगी, कठिन और दुर्बोध वस्तुएँ सरल और बोधगम्य

हो जायेंगी, और जहाँ पहले छोटे मस्तिष्क से हम केवल असंगतियाँ देखते थे, वही संपूर्ण सुसंगत और सुन्दर भाव देखेंगे। “अब हमें दर्पण में धुंदला सा दिखाई देता है पर उस समय आमने सामने देखेंगे अब मेरा ज्ञान अधूरा है पर उस समय ऐसी पूरी रीती से पहचानूंगा जैसा पहचाना गया हूँ।” १ कुरिन्थियों १३:१२।

13 प्रभु में आनंद

ईश्वर के पुत्रों को यीशु के प्रतिनिधि हो कर उनके सत्य, कल्याणकारी और क्षमाशील गुणों को प्रगट करना है। जिस प्रकार से यिशुने अपने पिता के सुंदर चरित्र को व्यक्त किया है, उसी प्रकार हम लोगों को यीशु के विमल चरित्र का प्रचार और प्रसार इस संसार में करना चाहिये क्योंकि उन के ममत्वपूर्ण प्रेम और दया से वह अनभिज्ञ है। यीशु ने कहा है, "जैसे तुने मुझे जगत में भेजा वैसे ही मैं ने भी उन्हें जगत में भेजा।" "मैं उन में और तू मुझ में की……जगत जाने की तू ने मुझे भेजा।" योहन १७:१८,२३। प्रेरित पावल ने यीशु के शिष्यों को कहा, "तुम मसीह की पत्नी

हो,” “उसे सब मनुष्य पहचानते और पढ़ते हैं।” २ कुरिन्थ ३:३,२। अपने प्रत्येक पुत्र में यीशु एक संदेश इस जगत के लिए भेजता है। यदि आप उनके शिष्य हैं तो ख्रीष्ट ने आप में आप के परिवार के लिए, गांव के लिए, सड़कों के लिए एक पत्र भेजा है। आप के ह्लदय में यीशु का वास है और वे उन लोगों के ह्लदय में वार्तालाप करना चाहते हैं जो उन्हें नहीं जानते। शायद इन लोगों ने बायबल का पाठ नहीं किया है, उसके पृष्टों से जिस की वाणी फूटती है, उसे अथवा उस वाणी को ही नहीं सुना है, ईश्वर की कृतियों उसके अद्वितीय प्रेम को कभी नहीं देखा है। किंतु यदि आप यीशु के सच्चे प्रतिनिधि हैं तो आप के द्वारा वे ईश्वर के कल्याणकारी गुणों के

आकृष्ट किये जा सकते हैं उसके प्रेम की प्रशंसा तथा उसकी सेवा में भी प्रवृत्त किये जा सकते हैं॥

ईसाई लोग स्वर्ग के मार्ग का पथ-प्रदर्शक ठहराए गए हैं। उनके ऊपर यीशु की ज्योति जो चमकती है उसे ही उन्हीं संसार पर प्रतिभासित करना है। उनका जीवन और चरित्र इतना निर्मल हो जाना चाहिये की उसकी निर्मलता और उज्ज्वलता देख दुसरे लोग भी ख्रीष्ट और उनकी सेवाओं की उचित कल्पना कर सकें।

यदि हम लोग ख्रीष्ट के सच्चे प्रतिनिधि हैं तो ख्रीष्ट की सेवाओं की वास्तविक प्रभा को निश्चय ही आकर्षक और मोहक

बनायेंगे। वे ईसाई जो अपनी आत्मा को उदासी और शोक के अंधकार से आच्छत्र कर लेते हैं तथा निरंतर कुड़कुडाते और शिकायत करते रहते हैं दुसरे लोगों के समक्ष ईश्वर और ईसाई जीवन के मुद्दे आदर्श उपस्थित करते हैं। वे ऐसा आदर्श रखते हैं मानो ईश्वर अपने पुत्रों को हर्षोल्लास में पूर्ण देख कर खुश नहीं होता। ऐसा कर वे ईश्वर को मिथ्या बनाते है और हमारे स्वर्गीय परमपिता को कलंकित करते हैं॥

ईश्वर के पुत्रों को अविश्वास और उदासी के गर्त में ले जाकर शैतान बड़ा ही खुश होता है। हमारा भरोसा ईश्वर से हटते देख वह प्रसन्न होता है। उसकी उद्धार और रक्षा

करने की शक्ति और इच्छा पर जब हम संदेह करने लगते हैं, तो वह फुला नहीं समाता। वह हमें यह अनुभव करने चाहता है की ईश्वर अपने दया के प्रबंध के द्वारा हमारी हानी करेगा। ईश्वर को करुणा और दया के भाव से विहीन चित्रित करना तो शैतान का काम है ही। उसके बारे हो सत्य व्यक्त हैं, उसकी व्याख्या वह गलत करता है। वह हमारे मस्तिष्क में ईश्वर की मिथ्या कल्पनाएँ और विचार भर देता है। अतएव ईश्वर के सत्य वचनों पर विचार न कर हम भी शैतान द्वारा प्रेरित अशुद्ध और भ्रष्ट विचारों में विचारों में डूब जाते है, और उस पर अविश्वास प्रगट कर तथा उसके विरुध आक्षेप कर हम ईश्वर का निरादर

करते है। शैतान को सतत चेष्टा यह रहती है हमारा धार्मिक जीवन अंधकार से भरा है। वह धार्मिकता को कष्टमय और विघ्ने से भरा दिखाना चाहता है। जब ईसाई अपने जीवन मे धर्म का ऐसा ही रूप खड़ा करता है तो वह अपने अविश्वास के कारन वही कम करता है जो शैतान अपने मिथ्या प्रदर्शन व्दारा करता है॥

जीवन पथ के बहुत से पथिक भग्नी अपनी गलतियों, विफलतायों और नैराश्य के बारे अहिक सोचते है और अपने ह्रदय को शोक और क्षोभ से टुकड़े टुकड़े कर लेते है। जब में यूरोप में थी, तो एक धर्म बहन ने मेरे पास पत्र लिखा। वह बहुत संतप्त थी और उसने उत्साह

और शांत्याना के कुछ शब्द मांग भेजा। जिस दिन चिठ्ठी पढ़ी उसके बाद की रत मे मैं ने एक स्वप्न देखा कि मैं एक बैग में हूँ और एक पुरुष जो उसके मालिक के जैसा लगा, मुझे उस बाग के रास्ते से लिए जा रहा है। मैं फूल चुन रही थी और उनका आनंद ले रही थी तो इस बहन ने, जो मेरे संग थी, मुझे पुकारा और एक झाड़ी को दिखाया जो उसके मार्ग को रोके हुए थी। वह दु:खित और चिंतित हो रही थी। वह पथदर्शक के अनुसार मार्ग पर नहीं चल रही थी किंतु झाड़ी और झुरमुट में चल रही थी। वह चिल्ला रही थी कि कितने दु:ख की बात है जो इस सुंदर बाग में कांटे और झाड़ी भर गई है। तब उस पथ-प्रदर्शक ने कहा, - "वे तुम्हें

केवल चुभेंगे तुम केवल गुलाब, कुंदे,
अपराजिता आदि फूलों को चुनो॥”

क्या आप को अपने जीवन के अनुभवओं में कुछ दौप्त और धवल अनुभव प्राप्त नहीं हुए! क्या कमी ऐसा मंगलमय मौका नहीं आया जब आप का ह्रदय उस ईश्वर के आत्मा की प्रभा से अनुप्राणित हो उल्हास से भर न उठा हो ? जब आप अपने जीवन के अनुभव के अध्यायों पर द्दष्टी डालते हैं तो क्या कुछ आकर्षक पृष्ट नहीं दिखाई पडते ? उस सुघंधित पुष्पों की तरह ही क्या ईश्वर की प्रतिज्ञा आप के मार्ग के चारों ओर नहीं उगी हैं ? क्या आप अपने ह्रदय को उनके सौंदर्य और सुंगधि से भर लेना नहीं चाहते? झाड़ियों और काटों से आप के पैरों में

घाव हो जावेगे। और यदि आप इन्हें ही चुनेगे और इन्हें ही दूसरों को अर्पित करेँगे तो क्या आप ईश्वर को कलंकित नहीं करेंगे और साथ साथ दूसरों को भी जीवन के मार्ग पर चलने से नहीं रोकेंगे? अपने बिगत जीवन की दु:खद स्मृतियों को बटोर रखना अच्छा नहीं। बीते दु:ख विफलताएं और शोक के बारे बातें करना और चिंतित होना अच्छा नहीं। ऐसा करने से हम हताश हो जायेंगे। और हताश आत्मा में अंधकार ही अंधकार भरा रहता है। यह अंधकार इतना साधन होता है कि ईश्वर का प्रकाश तो आत्मा में प्रवेश पता ही नहीं साथ साथ यह दूसरों के मार्ग पर भी कलि छाया ढँक देता है॥

परमेश्वर को धन्य कहो कि उसने हमारे समक्ष बड़े ही भव्य चित्र रखे है। हमें यह चाहिये कि हम उनके प्रेमपूर्ण आशीर्वाद और ममत्व के वचन एकत्र कर लें तथा उन्हीं पर सदा ध्यान लगायें। जिन चित्रों को हमें बराबर ध्यान में रखना चाहियें उन मे महत्वपूर्ण चित्र ये है - ईश्वर-पुत्र का अपने पिता के सिंहासन से अलग होना तथा अपने स्वर्गीय रूप को मानवी रूप में परिवर्तन करना ताकि वे मनुष्यों को शैतान के चंगुल से निकाल सकें ; हमारें हित के लिए उनकी जीत जिससे मनुष्यों के लिय स्वर्ग का व्दार खुल गया, और मनुष्यों की आँखों के सामने वह ईश्वरीय प्रकोष्ट प्रत्यग्य हो गया जहाँ ईश्वर अपने विभूतियों को प्रत्यग्य करता है ; पाप व्दारा विनाश के गर्त में

ढकेले हुए मनुष्य का उद्धार और अनादी अनंत परमेश्वर के साथ संबंध तथा उन मनुष्यों के मुक्तिदाता पर विश्वास और भक्ति कर योशु की धार्मिकता के वस्त्रों को पहन ईश्वर के सिंहासन के पास उपस्थित होना। ईश्वर की इच्छा है कि हम इन्हीं चित्रों पर ध्यान लगावें॥

जब हम ईश्वर के प्रेम को संदेह की दृष्टी से देखते है, उनकी प्रतिज्ञाओं पर अविश्वास प्रगट करते है तो हम उन्हें अपमानित करते है, और उनके पवित्रात्मा को कष्ट देते है। अपने सरे जीवन भर यदि माता ने प्रनापन से अपने बच्चो को सुख और आराम पहुचाने की चेष्टा की है और अब यदि

बच्चे अपनी माँ की शिकायतें बराबर करते है कि उस ने उनकी भखाई नहीं कीं, तो माता के ह्रदय भग्न न होगा ? अपने पुत्रों व्दारा इस प्रकार का व्यवहार क्या माँ-बाप पसंद करेंगे ? अब जिस स्वर्गीय परमेश्वर ने हमारे प्यार के कारण अपना एक मात्र पुत्र हमें सौंप दिया, यदि उसके प्रेम पर हम अविश्वास करें, तो हमें क्यों कर प्यार करेगा ? प्रेरित ने लिखा है, "जिसने अपने निम पुत्र को भी न रख छोड़ा पर उसे हम सब के लिए दे दिया वह उसके साथ हमें और सब कुछ क्यों कर न देगा?" रोजी ९:३२। फिर भी कितने लोग हैं जो वचन से नहीं तो कार्या से यह घोषित करते है कि, "मेरे लिए इतना करना ईश्वर का उद्देश नहीं

है। शायद वह दूसरों को प्यार करता है, पर मुझे प्यार नहीं करता॥"

ऐसे सारे विचारों हमारों आत्मा के लिए हानिकारक है, क्योंकि शंका और संशय के प्रत्येक शब्द जब हम मुहं से निकालते है तो शैतान की परीक्षा को आमंत्रित करते है। ये मन मैं संदेह करने की आदत का जड़ जमाती है, और स्वर्ग दूतों को आप की सहायता करने से दूर भगाती है। जब आपको शैतान परीक्षा कर रहा हो , तो शंका और संदेह का एक शब्द भी मुहं से न निकालिए। यदि आप उसकी प्रेरणा मैं पद रहे है तो आप के मस्तिष्क मैं अविश्वास और विरोध की भावना तीव्र हो जावेगी। ऐसी अवस्था मैं जब आप अपने भाव और विरोध की

भावनाओं को शब्दों व्दारा करेंगे , तो संदेह के प्रत्येक शब्द से आप मैं हानिकारक प्रतिक्रियायें होंगी, और यह दूसरों के जीवन मैं बीज की तरह जा पड़ेगा , शीघ्र हो अंकुरित होगा और फल भी देगा। तब इसके प्रभाव के विस्तार को रोकना मुश्किल होगा। आप पाप की आसक्ति और शैतान के जाल से विकट चेष्टाओं व्दारा निकल जांय तो निकल जायं लेकिन अन्य लोग जो आप के प्रभाव मैं पद कर अविश्वास के अंधे कुँए में गिरे पड़े है वे शापाद बच कर न निकल सकें। अतएव वैसे ही बातें बोलनी चाहिएं जिस से अध्यात्मिक जीवन और शक्ति बढ़े॥

स्वर्गदूत गण सदा यह सुन रहे है कि आप अपने स्वर्गीय स्वामी के बारें कैसे वृतांत दूसरों को सुना रहे है। अतएव आप को सदा उन्ही के बारें संभाषण करना चाहिए जो ईश्वर के समक्ष आप को मुक्ति के लिए सतत निवेदन करते है। जब जब आप किसी मित्र से मिले तब तब ईश्वर के गुणगान ही होंगे और हृदयों में रहे। इस से आप के मित्र के विचार शीघ्र ही योशुं की और आकृष्ट होंगे। सबों को क्लेश भोगने पड़ते है , सबों को भारी सहना पड़ता है। सबों को कठिन परीक्षाओं का मुकाबिला करना पड़ता है। अतएव अपने मित्रो से अपने दू:ख रोग और पीडाओं का उल्लेख मत कीजिये। इन्हें ईश्वर के समक्ष प्रार्थना में लाइए। वह नियम बना लीजिये कि शंका

अथवा निराश के एक शब्द भी मुहं से न निकालूँगा। आप अपने आशा से भरे और हर्ष से डूबे शब्दों के व्दारा दूसरों के जीवन में प्रकाश तथा उनके उद्योगों में सहस और दृढ़ता भर सकते है॥

कई साहसी वीर पुरुष हैं जो परीक्षाएं व्दारा बुरी तरह दबे हुए है और स्वार्थ तथा दुव्यसनों से संघर्ष करते करते पिसे जा रहे है ऐसे तुमुल संग्राम प्रवृत लोगों को निराश मत कीजिये। ऐसे लोगों को साहस और आशा के शब्दों व्दारा उत्साहित कीजिये ताकि वे दुने बल से शत्रु पर आ पड़े। तभी योशु की ज्योति आप से फुट निकलेगी। “हम में से न कोई अपने लिए जीता है।” रोमी १४:७। हमारे अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव

व्दारा कितने लोगों के ह्रदय में नई उमंग और शक्ति भर सकती है अथवा वे निराश हो खीष्ट और सत्य से विमुख जा सकते है। बहुत से लोगों मन में यीशु और उनके जीवन के बारे भांतिमुलक धारणा में है। उन की धारणा यह है कि यीशु में ममत्व नहीं था, अनुराग नहीं था और वे कड़े, रूखे तथा उदासीन थे। बहुधा समस्त धार्मिक अनुभव ही काली धारणा से आवृत्त हैं॥

अक्सर यह कहा जाता है कि यीशु कई बार रोये, किंतु यीशु को मुश्किराते किसी ने नहीं जाना। हमारे मुक्तिदाता का वास्तविक जीवन दू:खमय था। वे सदा से शोकग्रस्त रहे क्योंकि उन्होंने अपने ह्रदय को सारे मनुष्य के दू:खो के लिए

खोल दिया था। परन्तु यदापि उनका जीवन आत्मत्याग पूर्ण था, यदापि उनके जीवन में पीडाओं और चिंताओं की सधन छाया पड़ी हुई थी, तथापि उनकी स्फूर्ति और अन्तचेतना विनष्ट नहीं हुई थी। उनके चेहरे पर शोक की कालिमा कभी नहीं रही किंतु सदा गंभीर शांति की झलक रही। उन का ह्रदय जीवन का अजस्त्र सोत था, और वे जहाँ भी जाते थे विश्राम और शांति , आनंद और उल्हास लिए जाते थे॥

हमारे मुक्तिदाता बड़े गंभीर थे, पूरी एकनिष्ट से कर्त्तव्य में संलग्न थे, किन्तु कभी उदास अथवा-श्रीहीन नहीं थे। जो भी उनका अनुकरण करेगा अपने जीवन में उद्योगशील रहेगा और वैयक्तिक

उत्तरदायित्व को पूरी तरह समझेगा। अस्थिरता जीवन का शमन होना; थोरगूल से भरा हुआ आमोद प्रमोद उसके जीवन से बहिस्कृत होंगे; असभ्य दिल्लगियाँ नहीं होंगी। यीशु के धर्म से गंभीर नदी की प्रशांति मिलती है। हर्षोल्लास के प्रकाश को यह नष्ट नहीं करता; यह प्रसन्नता को दबाता नहीं, और न मुस्कान भरे प्रफुल्ल मुखड़े पर बादल की धूमिल छाया ला गिरता है। ख्रीष्ट सेवित होने नहीं परन्तु सेवा करने आया था। और अब उनका आतुल प्रेम हमारे ह्रदय में स्थापित रहेगा तो हम निश्चय ही उनके आदर्श उदाहरण का अनुकरण करेंगे॥

यदि हम दूसरों के क्रूर और अन्याय से भरे कार्य अपने ह्रदय में समेत कर रखे रहेंगे तो उन्हें प्यार करना, हमारे लिए मुश्किल होगा, खास कर जिस प्रकार ख्रीष्ट ने हमें प्यार किया, उस तरह प्यार करना तो असंभव ही होगा। किन्तु यदि हमारे ह्रदय में यीशु की हमारे प्रति आश्चर्यजनक प्रेम और दया का भाव बना रहे, तो हम उसी भाव से दूसरों के प्रति बर्ताव भी करेंगे। हमें एक दुसरे को प्यार और सम्मान की दृष्टी से देखना चाहिये, चाहे दूसरों में दुर्बलतायें और त्रुटियाँ हों या नहीं। इन कमजोरियों पर नजर रखते हुए भी प्रेम प्रदर्शित करना ही उचित है। हमें नम्रता और दीनता का भाव लाने तथा अपने स्वार्थ को दबाने की आदत डालने की चेष्टा करनी

चाहिये। दूसरों के अवगुणों ममता भरी दया की दृष्टि से देखना उत्तम है। इससे हमारे अंदर स्वार्थ की जितनी संकुचित भावनायें हैं सब नष्ट हो जायेंगी तब हम उदार-हृदय एवं सहिष्णु हो उठेंगे॥

स्तोत्रकर्ता ने कहा है, “यहोवा पर भरोसा रख और भला कर देश में बसा रह और सच्चाई में मन लगाये रह” भजन ३७:३। “यहोवा पर भरोसा रख।” प्रत्येक दिन के कुछ कर्तव्य हैं, कुछ अपनी चिंतायें होती है, कुछ उलझने होती हैं। जब जब हम एक दुसरे से मिलते हैं अपने दुःख और चिंताओं के बारे कितनी तत्परतासे बातचीत करते हैं। इतने अधिक फीके और मुसीबते आ जाती हैं, इतने भय आ दबाते हैं, चिंताओं की इतनी बड़ी गठरी

उलट दी जाती है की जैसे हमारे कोई करुणामय, प्रेमपूर्ण मुक्तिदाता हैं ही नहीं, और वे हमारी प्रार्थनाएं सुनते ही नहीं, दुःख के समय हमारी सहायता करते ही नहीं॥

कुछ लोगों की आदत डरने और मुसीबतें बाधा लेने की हो गयी है। प्रत्येक दिन उनके आसपास ईश्वर के प्रेम के चिन्ह भरे रहते हैं। नित्य प्रति उन के वरदहस्तों के उपहार वे पाते और प्रसन्न होते है किंतु इन वर्तमान के उपहारों पर वे दृष्टि ही नहीं डालते। जैसे वे हैं ही नहीं। असल बात तो यह है की उनके मस्तिष्क में सदा यह भावना तहती है की यह वस्तु असंतोषप्रद है, वह अनुचित है और इस तरह वे असंतुष्ट हो

जाने के आदि हो जाते हैं। वे डरते हैं की कहीं यह दु:खद घटना न हो जाय। अथवा कुछ चिंतायें आ जाती हैं जो वास्तव में छोटी हैं। तोभी इन छोटी चिंताओं में मन इतना व्याकुल हो जाता है की मनुष्य असंख्य विशाल उपहारों को जिनके लिए उन्हें कृतज्ञ होना है देख नहीं पाते। अब जब मुसीबतें आ जाय तो एक मात्र सहायक ईश्वर के पास दवड़ना चाहिये किंतु होता ऐसा नहीं है। क्लेश की मार से लोग ईश्वरोंमुख न हो कर ऐसे अशांत, अधीर और व्याकुल हो जाते हैं की ईश्वर को भूल जाते हैं और ईश्वर से और भी दूर जा पड़ते हैं॥ क्या यह आवश्यक है की हम इस पर अविश्वास करें! हम क्यों ऐसे अकृतज्ञ और संशयपूर्ण बनें यीशु हमारे परममित्र हैं,

स्वर्ग के सारे प्राणी हमारे कल्याणात्मक काम के लिए उद्दत हैं। दैनिक जीवन की चिंताओं और उलझनों में हमें अपने मन की शांति, स्थिरता और धैर्य न खोना चाहिये। यदि हम अशांत, अधीर और व्याकुल हो जावेंगे तो हम सदा चिड़चिड़े रहेंगे और एक न एक चीज से असंतुष्ट और रूपट रहेंगे। हमें अधीर या व्याकुल न होना चाहिये क्यों की वह तो हमें क्रोधी बनाता है और हमारा ह्रास करता है न की वह मुसीबतों को अच्छी तरह सहने में हमें मदद करता है॥

आप अपने व्यवसाय में घबडा सकते हैं तब आप के भविष्य का जीवन अंधकार से भरा दिखाई पड़ सकता है, और तब हानि की संभावना हो सकती है। किंतु

निराश मत होइये, अपनी सारी चिंतायें ईश्वर के चरणों पर अर्पित कीजिये, धैर्य धारणा कर प्रसन्न रहिये। फिर अपने व्यवसाय को चतुराई से संभालने की शक्ति पाने के लिये प्रार्थना कीजिये। इस तरह हानि और विनाश को रोकिये। अपनी सारी शक्ति से लाभ के लिये चेष्टा कीजिये। यीशु ने अपनी सहायता के लिये वचन तो दिया है लेकिन हमें निष्चेष्ट बैठे रहने नहीं कहा। जब अपने सहायक प्रभु पर भरोसा करके आपने अपनी सामर्थ्य पर कोशिश की है, तो जो भी फल प्राप्त हो, इसे प्रसन्न हो कर ग्रहण कीजिये।

ईश्वर की ऐसी इच्छा नहीं की उसके मनुष्य चिंताओं के बोझ से दबे रहे। किंतु

हमारे प्रभु हमें धोखा नहीं दे सकते। वह हमें वह नहीं कहता, “डरो मत, तुम्हारे मार्ग में कोई खतरा नहीं।” वह यह जानता है की जीवन के मार्ग में अनेक दु:ख है, मुसीबते हैं और वह हम से साफ़ तौर से कह देता है। जीवन कष्टपूर्ण है। वह पाप और कुव्यसनों से भरे संसार से हमें दुसरे लोक में ले जाना नहीं चाहता किंतु हमारी सहायता के लिये उस सदा मदद देनेवाले ईश्वर को हम दिखा देता है। अपने शिष्यों के लिये उसने जो प्रार्थना की थी वह ऐसी थी, “मैं यह बिनती नहीं करता की तू उन्हें जगत से उठा ले पर यह की तू उन्हें उस दृष्ट से बचाए रख”। फिर वह कहते हैं, “संसार में तुम्हे क्लेश होता है पर ढाढस बांधों मैं ने

संसार को जीता है।" योहन १७:१५;१६:३३॥

पहाड़ पर उपदेश देते समय यीशु ने अपने शिष्यों को बहुमूल्य शिक्षाएँ दी थी जिस में उन्हों ने ईश्वर पर भरोसा करने की आवश्यकता बतलाई थी। इन शिक्षाओं का प्रयोजन यही था की इस से सभी युगों के बच्चे उत्साह ग्रहण करे। ये शिक्षायें हमें पूरी शांति और सांत्वना के पाठ सिखाते हैं और इस लिये हमें भी प्राप्त हो गयी हैं। मुक्तिदाता ने आकाशगामी चिड़ियों को दिखलाया जो चिंताओं से मुक्त, स्वछंद मगन में ईश्वर गुणगान की मधुरतान छेड़ती हुई उड़ी जा रही थी, और कहा "वे न बोते हैं न लगते।" फिर भी परमपिता उनकी

आवश्यकतायें पूरी कर देते हैं।
मुक्तिदाता पूछते हैं, “क्या तुम उन से बहुत बढ़ कर नहीं?” योहन ६:२६।
मनुष्यों और पशुओं की आवश्यकताओं की व्यवस्था करने वाले पाने हाथ खोल देते हैं और अपने सारे प्राणियों की जरूरते पूरी करते हैं। छोटी चिड़िया को भी वे भूलते नहीं। यह बात ठीक है की वे चोंच में दाना नहीं डालते। फिर भी दाने की व्यवस्था वे कर देते हैं। दाना संग्रह करना ईश्वर का काम नहीं, चिड़िया का काम है और दाना छिटना ईश्वर का काम है। अपने छोटे खोते के लिये सामान जुटाना चिड़िया का काम है। अपने काम करते करते वे गीत गति रहती हैं क्योंकि “तुम्हारा स्वर्गीय पिता उन्हें पालता है।” और क्या “तुम उन से

बहुत बढ़ कर नहीं?” क्या आप अपनी सारी कुशाग्रता, प्रतिभा और भक्ति से चिड़ियों से अधिक बहुमूल्य नहीं हैं? अब यदि हम उन पर भरोसा करें, तो जिस ने हमारा जन्म दिया, हमारे जीवन का लालन पालन कर हमें बनाए रखा, तथा जिसने अपनी स्वरुप में हमें निर्मित किया, क्या यह ईश्वर हमारी आवश्यकताएँ अब पूर्ण न करेगा?

सुन्दर घने रूप में उगे, ईश्वर के मनुष्य के प्रति अतुल प्यार के साकार रूप सौंदर्य-सुषमा में प्रफुल्ल कुसुम के दलों को दिखा कर यिशुने अपने शिष्यों से वहा, “मैदान के सोसनों पर ध्यान करों वे कैसे बढ़ते हैं।” इन प्राकृतिक कुसुमों का सौंदर्य और सरलता सुलेमान की भव्यता

और ऐश्वर्य को फीका बना देती है। ईश्वर की सृष्टि में उगे फूलों की प्राकृतिक सुषमा और सौंदर्य-राशी के आगे कला-कौशल द्वारा बनाया चमचम चमकनेवाला सुन्दरतम और श्रेष्ट वस्त्र भी तुलना के योग्य नहीं। यीशु पूछते है, “यदि परमेश्वर मैदान की घास को जो आज है और कल भाड़ में झोकी जायेगी ऐसा पहिनता है तो हे अल्पविश्वासियों वह क्यों कर तुम्हे न पहिनायेगा।” मती ६:२८, ३०। जब यह स्वर्गीय चित्रकार क्षण-भंगुर और तुरंत मुरझाने वाले पुष्प को कोमलता और सुंदर रंग से सजाते है, तो आप जैसे लोगों की वह कितनी सावधानी और श्रृंगार करेगा, चिंता करेगा, और ममता से रखेगा, क्योंकि आप को उसने अपने ही सद्दश बनाया

है? अविश्वासी लोगों की लिये वह पाठ यीशु की सब से बड़ी चोट है, उन की आकुलता और चिंताओं पर एक फटकार है॥

ईश्वर चाहता है की उनके समस्त पुत्र पुत्रिया खुश रहें, आनंदमय रहें, शांत रहें, और आज्ञाकारी रहें। यीशु ने कहा है, “मैं तुम्हे शांति दिये जाता हूँ अपनी शांति तुम्हे देता हूं जैसे संसार देता है वैसे मैं तुम्हे नहीं देता।” “मैं ने ये बातें तुम से इस लिये कही है की मेरा आनंद तुम में रहे और तुम्हारा आनंद पूरा हो जाय।” योहन १४:२७;१६:११।